अंक : १३३

जनवरी - मार्च २०१६

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

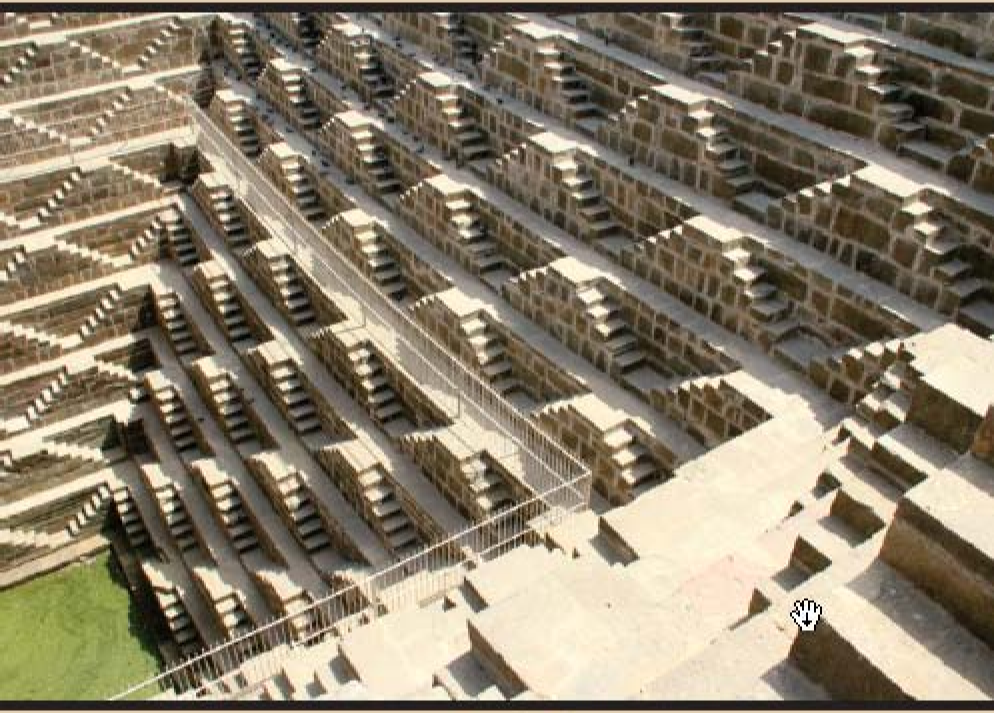

कहानियां

अंशु जौहरी ● लक्ष्मी रानी लाल

पूनम 'मनु' ● डॉ. सुभाष रंजन

आमने-सामने

डॉ. राजम पिल्लै

सागर-सीपी

डॉ. फूलचंद 'मानव'

२० रुपये

जनवरी-मार्च २०१६
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। सिर्फ़ आधे घंटे के लिए - अंशु जौहरी
।। १५ ।। मलबों के ढ़ेर से - लक्ष्मी रानी लाल
।। २१ ।। निषिद्ध पथ के राही - पूनम "मनु"
।। २९ ।। बिरवे - डॉ. सुभाष रंजन

लघुकथाएं

।। १९ ।। नचिकेता प्रश्न / सुरेश कुशवाहा "तन्मय"
।। ३५ ।। मां का संकेत / राधेश्याम पाठक "उत्तम"
।। ४८ ।। कोबरा हार गया / राधेश्याम पाठक "उत्तम"
।। ५४ ।। "तू किस मिट्टी की बनी है मां !"/ डॉ. कुंवर प्रेमिल

कविताएं / ग़ज़लें

।। २० ।। कविता / सदाशिव कौतुक
।। २० ।। ग़ज़ल / राजेंद्र तिवारी
।। २८ ।। ग़ज़लें / राजेंद्र "निशेश," नवीन माथुर "पंचोली"
।। २८ ।। ग़ज़लें / लक्ष्मीकांत पांडेय, सच्चिदानंद "इंसान"
।। ३८ ।। कविताएं / डॉ. राजम पिल्लै
।। ४० ।। कविता / संतोष कुमार तिवारी

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ३६ ।। "आमने-सामने" / डॉ. राजम पिल्लै
।। ४१ ।। "सागर-सीपी" / डॉ. फूलचंद "मानव"
।। ४७ ।। "बाइस्कोप" (सविता बजाज) / शफ़ीक अहमद
।। ४९ ।। पुस्तक-समीक्षा

●"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : चांद बावड़ी, आभानेरी, दौसा, राजस्थान
चित्रकार : तूलिका सक्सेना

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

वर्ष २०१६ का यह प्रथम अंक है. कहना न होगा कि पिछले कुछ समय से हमें रचनाकारों का भरपूर सहयोग मिल रहा है. अधिकांश लेखक अब रचना भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग करते हैं. यह दर्शाता है कि आज के हिंदी लेखक ने समय को पहचाना है और नयी "तकनीकी" से वह बाबस्ता है. वह निरा फटेहाल नहीं है. उसके पास लैपटॉप है, इंटरनेट कनेक्शन है, स्मार्टफ़ोन है, "वाट्स-एप" के माध्यम से क्षणांश में, दुनिया के किसी भी भाग में रहने वाले लोगों से वह संपर्क कर सकता है. इस सबके बाबजूद हिंदी टाइपिंग में अभी भी कई दिक्कतें सामने आती हैं. बाज़ार में कई "सॉफ़्टवेयर" उपलब्ध हैं. किंतु एकरूपता के लिए यूनिकोड का प्रयोग सुविधाजनक है. रचनाकारों से हमारा आग्रह रहता है कि वे कहानी यूनिकोड में भेजें या पीडीएफ फ़ाइल में भेजें. हमारी कोशिश रहती है कि एक माह के भीतर निर्णय से अवगत करा दिया जाये. कृपया लघुकथा, कविता, ग़ज़ल, गीत आदि छुट-पुट रचनाएं साधारण डाक से ही भेजें. ई-मेल का प्रयोग न करें. एक विनम्र निवेदन और – रचना मिलने, निर्णय आदि को लेकर कृपया फ़ोन न करें. यथा समय हर रचनाकार को निर्णय की सूचना भेजी जाती है.

पिछले ७-८ सालों से "बाइस्कोप" स्तंभ के माध्यम से सुश्री सविता बजाज फ़िल्म-जगत के अपने अनुभवों को "कथाबिंब" के पाठकों से शेयर करती रही हैं. घुटनों की तकलीफ़ के कारण एक अरसे से उन्हें छड़ी लेकर चलना-फिरना पड़ता था. लगभग तीन महीने पहले वे बस-यात्रा कर रही थीं. किसी बुजुर्ग को सीट देने के लिए खड़ी हुईं कि बस चल पड़ी. वे संभल नहीं पायीं और गिर पड़ीं. उनके कूल्हे की हड्डी टूट गयी. डेढ़-दो महीने तक अस्पताल में रहना पड़ा. उनका स्वास्थ्य अब ठीक है लेकिन उन्होंने असमर्थता ज़ाहिर की है कि वे भविष्य में रचनात्मक सहयोग नहीं कर पायेंगी.

इस बार *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१५"* के पुरस्कारों की घोषणा पृष्ठ ४ पर प्रकाशित की गयी है. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई. प्रशस्ति-पत्र के साथ पुरस्कार राशि शीघ्र भेजी जायेगी. वेबसाइट के अलावा *"कथाबिंब"* को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है.

●

अब इस अंक की कहानियों का ट्रेलर – यह इत्तफाक ही है कि इस बार भी अंक की पहली कहानी *"सिर्फ़ आधे घंटे के लिए"* की लेखिका अंशु जौहरी अमेरिका निवासी हैं. "कथाबिंब" में यह इनकी पहली कहानी है. गांव से शहर आने पर एक "कल्चरल शॉक" लगता है, लेकिन मूल परिवेश नहीं बदलता. किंतु विदेश में रहकर आपको हर क्षण अलग तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है. अंतरा घर-परिवार की सारी ज़िम्मेदारियां उठाती है. पति हमेशा ही काम में व्यस्त रहता है. उनके बीच कोई संवाद नहीं है. कोशिश करने पर भी अंतरा अपनी गंभीर बीमारी की बात पति से नहीं कर पाती. ऐसे में, उसकी जान-पहचान एंड्रयू से हो जाती है जो अंतरा को रोज़ आधे घंटे का समय देने को तत्पर है. *"मलबों के ढेर से"* की लेखिका लक्ष्मी रानी लाल का नाम भी "कथाबिंब" के पाठकों के लिए नया है. यह ज़रूरी नहीं है कि युवा अवस्था में बना हर प्रेम-संबंध परिणति पा सके. न चाहते हुए भी कई बार स्थितियों से समझौता करना पड़ता है. समय के बहाव में "यादें" कहां दब-छुप जाती हैं मालूम ही नहीं पड़ता. यादों के ढ़ेर को कुरेदने से कुछ हासिल नहीं होने वाला. अगली दो कहानियों के रचनाकार भी पत्रिका के पाठकों के लिए नये हैं. *"निषिद्ध पथ के राही"* (पूनम "मनु") एक सकारात्मक सोच की कहानी है. आज रोज़ ही किसानों द्वारा, विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या की ख़बरें सुनाई पड़ती हैं. चाहे बिन्नी हो या रोहित बेमूला हो या और कोई. आत्महत्या मुश्किलों से भागने का आसान तरीका है, किंतु "एक निषिद्ध पथ!" अंक की अंतिम कहानी *"बिरवे"* की विषय-वस्तु नयी नहीं है. काकू मां ने बच्चों का भविष्य बनाने में अपना जीवन होम कर दिया. केवल लड़के का दोस्त, एक पड़ोसी युवक है जो अक्सर काकू के काम आता है. बुढ़ापे में काकू मां के पास बेटे-बेटियों में से कोई नहीं है. उन्हें इंतज़ार है कि काकू कब स्वर्ग सिधारें और कब हिस्सा-बांट हो ? वे भूल जाते हैं कि समय आने पर उनके साथ भी ऐसा ही हो सकता है!

●

पिछले तीन महीने का समय काफ़ी गहमागहमी का रहा. संसद में गतिरोध के बावजूद कुछ बिल पास हुए लेकिन इस सत्र में भी जीएसटी पर कोई फ़ैसला नहीं हो पाया. देखा जाये तो जीएसटी को लेकर कॉन्ग्रेस का कोई ख़ास विरोध नहीं है. लेकिन जब भी संसद में बहस का मौक़ा आता है तो व्यर्थ ही कुछ अनर्गल मुद्दे उठाये जाते हैं. कॉन्ग्रेस और विपक्ष को चाहिए कि एक बार बिल पारित करके जीएसटी लागू होने दें. तत्पश्चात यदि कुछ ख़ामियां नज़र आयें तो बिल में आवश्यक संशोधन प्रतिस्थापित कर लिये जायें. हर राज्य का बिक्री-कर, ओक्ट्राई, वैट का ढांचा अलग-अलग है यही कारण है कि हर राज्य में चीज़ों की क़ीमत अलग होती है. और यह भी विदित है कि इन करों की ५० प्रतिशत से भी कम की वसूली ही हो पाती है. पेट्रोल और डीज़ल के दामों में यह अंतर स्पष्ट दिखाई देता है. मुंबई और दिल्ली में पेट्रोल की क़ीमत में प्रति लीटर ६ रु. का फ़र्क रहता है !

आज पूरा विश्व एक दोराहे पर खड़ा है. अभी हाल ही में बेल्जियम में, ब्रसेल्स हवाई अड्डे पर आत्मघाती हमला हुआ. इससे पूर्व पिछले साल पेरिस में. पाकिस्तान में भी आये दिन निरीह लोगों को मौत के घाट उतार दिया जाता है. कुछ दिन पहले हमारे यहां भी पाकिस्तान से आये आतंकवादियों ने सेना की पठानकोट के "एयरबेस" को उड़ाने की नाकाम कोशिश की. हमारे कई सैनिक शहीद हुए. अगर हम-आप अपने घरों में सुरक्षित बैठे हैं तो इसका श्रेय हमारी सेना को जाता है. चाहे कोई बड़ा त्यौहार हो या कोई राष्ट्रीय पर्व हर बार हाई अलर्ट ज़ारी की जाती है. भारत इतना बड़ा देश है, १३० करोड़ लोगों में से कैसे किसी घुसपैठिए या आतंकवादी को "चीन्हा" जा सकता है? यह भूसे के ढेर में से सुई ढूंढ़ने जैसा होगा. आप कहां-कहां सीसीटी कैमरे लगायेंगे. यहीं पर देश के हर धर्म, संपद्राय व जाति के नागरिकों का यह दायित्व बनता है कि कहीं भी कोई संदिग्ध गतिविधि या व्यक्ति नज़र आये तो बिना समय गंवाये पुलिस को सूचना दें. इसी संदर्भ में यहां दृष्टव्य है कि हाल ही में कश्मीर के उत्तर में, सीमा पर गश्त लगाते हुए, सियाचिन में बर्फीले तूफ़ान में दस सैनिक बर्फ़ में काफ़ी नीचे धंस गये थे. कई दिनों तक माइनस ४० तापमान में दबे होने के कारण ९ सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए. किसी तरह लान्स नायक हनमनथप्पा को बचाया जा सका. उनकी हालत बहुत गंभीर थी. इलाज़ के दिल्ली लाया गया. हनमनथप्पा कर्नाटक के धारवाड़ ज़िले के एक छोटे गांव बातादूर के किसान परिवार से थे. पैदल चलकर ६ किलोमीटर स्कूल पढ़ने जाते थे. शुरू से ही मिलेट्री ज्वाइन करके देश सेवा करना चाहते थे. लेकिन सेना-भरती की रैलियों में तीन बार असफल हुए. अंततः १४ साल पहले १९-मद्रास रेज़िमेन्ट में "एनलिस्ट" हुए. हनमनथप्पा के लिए देश में अनेक धार्मिक स्थलों में प्रार्थना सभाएं हुईं, हवन किये गये. न जाने कितने पुरुष और महिलाएं अपने अंग-प्रत्यंग देने को तत्पर थीं. लेकिन उन्हें बचाया नहीं जा सका.

इन्हीं परिस्थितियों के मध्य ९ फरवरी को बिना प्रशासन की अनुमति के दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विवि. के एक छात्र संघ ने मीटिंग की और अफ़जल गुरू की तीसरी बरसी मनायी. मीटिंग में नारे लगे, "अफ़जल गुरू हम शर्मिंदा हैं तेरे क़ातिल जिंदा हैं," "कितने अफ़जल मारोगे, हर घर में पैदा होगा अफ़जल." "भारत के सौ टुकड़े होंगे, इंशाअल्ला, इंशाअल्ला," "कश्मीर मांगे आज़ादी," "मोदी से मांगे आज़ादी," "संघ से मांगे आज़ादी"... आदि. मीडिया की कई चैनलों पर लगातार मीटिंग के विडियो दिखाये गये. इन पर भी प्रश्नचिन्ह लगाये गये. एक वीडियो में जे. एन. यू. की एक प्रोफ़ेसर डॉ. निवेदिता मेनन भी छात्रों को संबोधित करते हुए कुछ ऐसे ही नारे लगाती दिख रही थीं. यह सारा कुछ पाकिस्तानी चैनलों पर भी लगातार दिखाया जा रहा था. छात्र-संघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार का कहना है कि अफ़जल गुरू वाले नारे जे. एन. यू. के छात्रों ने नहीं लगाये थे बल्कि बाहर से आये कुछ लोगों ने लगाये थे. यदि यह मान भी लें तो अध्यक्ष होने के नाते कन्हैया ने ऐसे नारे लगाने से उन लोगों को रोका क्यों नहीं? देशद्रोह के आरोप में कन्हैया को जेल भेजा गया. छः महीने की बेल पर उन्हें सशर्त छोड़ा गया है, इसे किसी तरह की जीत नहीं समझना चाहिए. अफ़जल गुरू संसद-भवन पर हुए हमले का सरगना था. उसे पूरी न्यायिक प्रक्रिया के बाद कॉन्ग्रेस सरकार के कार्यकाल काल में ही फांसी दी गयी. कन्हैया के साथ खड़े होकर राहुल गांधी क्या यह दर्शाना चाहते हैं कि उच्चतम न्यायालय का निर्णय ग़लत था? वामपंथियों के लिए जे. एन. यू. किसी "तीर्थ" से कम नहीं. उन्हें कन्हैया के रूप में "ऑक्सीज़न" नज़र आ रही है. कॉन्ग्रेस के एक और नेता शशि थरूर ने तो कन्हैया की तुलना शहीद भगत सिंह से कर डाली. मैं कन्हैया और उनके सभी मार्क्सवादी समर्थकों से पूछना चाहता हूं कि देश को नक्सलों से कब आज़ादी मिलेगी?

●

गहमागहमी के इस मौसम में पांच राज्यों — असम, प. बंगाल, केरल, तमिलनाडु और पांडुचैरी में चुनावों की घोषणा हो गयी है. कई चरणों में अप्रैल-मई में चुनाव होंगे तथा १९ मई को परिणाम आयेंगे. उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश की सरकारों की स्थिति भी डांवाडोल है. राज्यसभा सदस्य और धनकुबेर विजय माल्या बड़े-बड़े बैंकों से अरबों का कर्ज लेकर विदेश पलायन गये. एक साधारण आदमी को बैंक से ऋण लेने के लिए जाने क्या-क्या रेहन रखना पड़ता है. तो बैंकों ने किस तरह से पैसा दे दिया. यह पूरी तरह "सिस्टम फ़ेल्योर" है. कुछ उसी तरह जैसा हर्षद मेहता ने किया था. सरकारी संस्थाओं ने बढ़-चढ़ कर उसे ऋण दिया. उसने मार्केट में पैसा लगाया. शेयर बाज़ार ३००० से १००००पहुंच गया. एक सूटकेस में एक करोड़ रुपये दिल्ली पहुंचाये गये. उन दिनों यह चर्चा का विषय रहा कि एक करोड़ रु. समाने वाले सूटकेस का आकार कितना होना चाहिए! इससे पहले कि तहक़ीकात पूरी होती मेहता जी स्वर्ग सिधार गये.

चलते-चलते ! अभी हाल ही में, दिल्ली में रात के समय एक छोटी-सी बात पर दंतचिकित्सक डॉ. पंकज नारंग की कुछ गुंडों ने हत्या कर दी. क्योंकि न वे दलित थे और न ही अल्पसंख्यक. इसलिए संवेदना जताने न तो युवराज, न केजरीवाल और न ही औवेसी उनके घर पहुंचे. यह दोहरा मापदंड क्यों?

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर २०१५ अंक प्राप्त हुआ. मैंने पहली बार 'कथाबिंब' का अंक देखा और उसे पूरा पढ़ने के बाद मैं यही कह सकता हूं कि यह हिंदी में कहानी की अद्‌भुत पत्रिका है. आवरण पृष्ठ सुंदर एवं आकर्षक है. 'कुछ कही, कुछ अनकही', में आपका अंदाज़ अच्छा है. रचनाओं के साथ-साथ सम-सामयिक विषयों पर आपकी टिप्पणी यथार्थपरक है. कहानियों के बारे में संपादकीय में आपके संकेत कहानियों को पढ़ने हेतु प्रेरित करते हैं तथा उनके महत्व को भी रेखांकित करते हैं.

इस अंक की सभी कहानियां — 'इंतज़ार', 'भीतर का दबा सच', 'वरदहस्त', 'इकत्तीस का महीना', 'बिछावन' अत्यंत रोचक एवं हृदयस्पर्शी हैं. सभी लेखकों को बहुत-बहुत बधाई. लघुकथाएं भी अच्छी हैं. उसमें ओमप्रकाश बजाज की 'चुनौती' तथा योगेंद्र शर्मा की 'चोर-पुलिस', सुरेश सौरभ की 'खेल' तथा मधुदीप की 'दौड़' यथार्थपरक रचनाएं हैं. 'आमने-सामने', 'सागर सीपी' तथा 'बाइस्कोप' अच्छे स्तंभ हैं. पत्रिका ने अपने पाठकों को भी पर्याप्त जगह दी है, जो कि बहुत अच्छी बात है, वरना आजकल पत्र-पत्रिकाओं से यह स्तंभ ग़ायब होता जा रहा है.

- *शिव कुमार कश्यप*

१५ बी, पौर्णमी अपार्टमेंट, पांच पाखाड़ी, नामदेववाड़ी, ठाणे-४००६०२ (महाराष्ट्र)

▸▸ 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर अंक मिला. पूरा अंक ही शानदार है लेकिन फिर भी मेरे दो विशेष धन्यवाद. पहला धन्यवाद डॉ. पुष्पा सक्सेना जी की कहानी 'इंतज़ार' के लिए जो मुझे बहुत अच्छी लगी. दूसरा धन्यवाद श्री सुभाष काबरा के साक्षात्कार के लिए. हम जिनके हास्य कवि और संचालक रूप से परिचित थे, उनके बारे में काफ़ी नयी जानकारियां मिलीं. मधुजी के सवालों का जवाब उन्होंने जिस सरलता और श्रेष्ठता से बिना आडंबर दिया, वह मन को छू गया. उस मित्र का आभार जिसने यह अंक पढ़ने को दिया. अब मैं नियमित पाठक बन रही हूं.

- *सरस्वती अग्रवाल*

एस/३/५०४, सुंदर नगर,
मालाड (प.), मुंबई ४०००६४.

▸▸ 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर २०१५ अंक प्राप्त हुआ. इस अंक में संपादकीय पढ़कर मैंने नीतू सुदीप्ति 'नित्या' की कहानी सर्वप्रथम पढ़ी. तत्पश्चात उनकी आत्मकथा 'लेखन मेरे जीने का साधन' पढ़ी. कहानी 'बिछावन' बहुत ही मार्मिक बन पड़ी है. साथ ही उनकी आत्मकथा भी अश्रुओं से परिपूर्ण है. एक मैट्रिक उत्तीर्ण महिला इतनी सुगठित व सौष्ठवपूर्ण कहानी लिख सकती है, विश्वास नहीं होता. मैंने तो कहानी व आत्मकथा दोनों में कई पंक्तियों को पढ़ते समय रेखांकित कर दिया है. डॉ. लता अग्रवाल की कहानी 'इकत्तीस का महीना' भी प्रशंसनीय है. मेरे एक मित्र अपने माता-पिता को एक माह स्वयं खिलाते थे, एक माह उनके बड़े भाई खिलाते थे. संयोग से अब उनके माता-पिता जीवित नहीं हैं. यह एक माह का अंतराल मुझे स्वयं अच्छा नहीं लगता था, पर वे मेरे मित्र थे इसलिए कुछ कह भी नहीं पाता था.

– *केदारनाथ 'सविता'*

पुलिस चौकी रोड, लालडिग्गी, सिंहगढ़ गली
(चिकाने टोला), मीरजापुर-२३१००१.
मो.: ९९३५६८५०६८.

▸▸ *अरविंद जी, यह मेरा आपको आख़िरी पत्र है, प्लीज़ बुरा न माने. जब आंधी आती है, सारे तिनके उड़ा ले जाती है, कुछ शेष नहीं रह जाता. मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ. एक्सीडेंट होने पर बहुत-सी सच्चाइयों को जाना कि भीड़ में कौन अपना और कौन पराया, और सच्चाइयों के पास जाने पर बहुत दुःख हुआ. आपने धन से मदद करनी चाही. मैं चाहकर भी नहीं ले सकती. मेरी अंतर-आत्मा धिक्कारती है क्योंकि धन की मुझे कभी कोई कमी नहीं हुई. ऑपरेशन के दौरान ही पैसों का*

जुगाड़ हो गया था. अभाव वस्तु का नहीं होता, वस्तु स्थिति का होता है और अब तो मैं ठीक हूं, आंधी गुज़र चुकी है, हां, यादें काफ़ी कटु मिली हैं.

अरविंद जी, जीवन तो मौत का साया है और जीवन की इकाई के कई स्तर हैं, और हर स्तर पर पीड़ा है. मर जाती तो मुक्ति मिलती लेकिन ईश्वर ऐसा नहीं चाहता था. मैं तो वैसे भी बहुत बार मर-मर कर जी उठी हूं. जीवन किसी को नहीं छोड़ता. मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं. भविष्य में 'कथाबिंब' के लिए नहीं लिख पाऊंगी क्योंकि अब न तो मैं लेखकों के पास जा सकती हूं और न ही उन्हें अपने पास बुला सकती हूं.

मैंने पोस्ट बॉक्स भी छोड़ दिया है. आप कह सकते हैं मैंने जीते जी अपनी कहानी का ख़ुद ही अंत कर दिया है. मैं 'कथाबिंब' के पाठकों से भी बड़ी विनम्रता से क्षमा-याचना करती हूं. भविष्य के लिए ढेरों शुभकामनाएं.

- सविता बजाज

द्वारा फ़िल्म राइटर्स एसोसिएशन,
२०१-२०२/बी-२९, ऋचा बिल्डिंग,
ऑफ़ न्यू लिंक रोड, लक्ष्मी एस्टेट,
अंधेरी (प.), मुंबई-४०००५३.
मो.: ९२२३२०६३५६

⏩ 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर २०१५ का अंक अपनी आकर्षक झलक और अपनी महत्वपूर्ण रचनात्मकता का रूप-स्वरूप लिये मेरे समक्ष है. आवरण चित्र : आकर्षक म. प्र. आदिवासी संग्रहालय की मनोहारी झांकी और महत्वपूर्ण रचनात्मकता की मिसाल के साथ वर्ष के समापन अंक की प्रस्तुति जिसमें कहानीकारों की कहानियों को पुरस्कृत करने के लिए बेहद उम्दा सुअवसर. ऐसे पुरस्कार जो उसके पाठकों के द्वारा तय किये जाते हैं एकदम बिना किसी लाग-लपेट के... 'कथाबिंब' की अब तक की तपस्या का प्रतिफल.

डॉ. पुष्पा सक्सेना की कहानी 'इंतज़ार' पढ़कर यह प्रतीत होता है कि ऐसी कहानियों का सर्वथा इंतज़ार किया जाता रहेगा. डॉ. लताजी की कहानी बेहद सम-सामयिक है. समय की नब्ज़ पर हाथ रखने जैसा ही... घर-घर में वृद्धों की दयनीयता इसका प्रमाण है. युवा पीढ़ी को इसके लिए कभी मुआफ़ नहीं किया जा सकता है. कविताएं सभी पठनीय हैं. चंद्रसेन 'विराट' की ग़ज़ल भी कम सम-सामयिक नहीं है. ख़्याल यह है कि लिखना-छपना तो हर कोई चाहता है पर उसके लिए गहरे अध्ययन-मनन की ज़रूरत नहीं समझता. रातों-रात लेखक/कवि बनने वालों के लिए ग़ज़ल का यह शेर काफ़ी नहीं है क्या?

'तीव्र इच्छा शक्ति, तप, संकल्प, श्रम, संघर्ष/बिना उच्चतर उपलब्धि की संभावना होती नहीं/बस देख साधक इस तरह तो साधना होती नहीं.'

– यानी बिना किसी परीक्षा में बैठे चयनित होने की चाह. 'कथाबिंब' की लघुकथाएं भी कहाानियों के समानांतर अपना वजन रखती हैं. अत्यंत हर्ष का विषय है कि लघुकथाएं अब 'फ़िलर नहीं पिलर हैं.'

'कथाबिंब' का स्तंभ 'आमने-सामने' पूरा विस्तार पा रहा हैं. यह पत्रिका की अपनी उपलब्धि है और 'सागर-सीपी' भी दिनों-दिन 'दिनमान' सा यश पा रहा है. 'कथाबिंब' आम आदमी, आम पाठक की एक ख़ास पत्रिका है. इसके संपादकजी के श्रम को अनदेखा नहीं किया जा सकता है.

- डॉ. कुंवर प्रेमिल

एम. आई. जी-८, विजयनगर,
जबलपुर-४८२००२ (म. प्र.)
मो. : ९३०१८२२७८२

⏩ 'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर – २०१५ (अंक १३२) मिला. 'कुछ कही, कुछ अनकही' को बिना पढ़े आगे बढ़ ही नहीं पाता हूं. सभी ज्वलंत मुद्दे आ गये हैं. 'लेटर बॉक्स' बताता है कि कहानियां प्रमुखता से पढ़ी जाती हैं और उन पर सार्थक प्रतिक्रिया भी मिलती है. पद्यांश (मुझे छोड़कर) अच्छा है. स्थायी स्तंभ भी पठनीय है.'

– चंद्रसेन विराट

१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी,
आनंद बाज़ार के पीछे,
इंदौर-४५२०१८ (म. प्र.).
मो.: ९३२९८९५५४०

“कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१५”

“कथाबिंब” *के प्रकाशन का यह ३८वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०१५ के “कथाबिंब” के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं* ***“कथाबिंब”*** *की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/ परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु.) :

● **कोटर वाले कक्का** - बृज मोहन

: श्रेष्ठ कहानी (७५० रु.) :

●**बिछावन** - नीतू सुदीप्ति *“नित्या”* ●**इकतीस का महीना** - डॉ. लता अग्रवाल

: उत्तम कहानी (५०० रु.) :

●**अंतिम पड़ाव पर** - संतोष परिहार ●**बाट जोहते हुए** - डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी

●**पहाड़ों की नर्म धूप** - नीरजा हेमेंद्र ●**भगदड़** - डॉ. अशोक गुजराती

●**जीवन खेल तमाशा** - रविशंकर सिंह

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत “कथाबिंब” त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. प्रकाशन का स्थान : यूनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंड. एस्टेट, भायखला, मुंबई -४०० ०२७.

२. प्रकाशन की आवर्तिता : त्रैमासिक

३. मुद्रक का नाम : मंजुश्री

४. राष्ट्रीयता : भारतीय

५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता : उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.

६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता : स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री

मैं, ***मंजुश्री*** *घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

(हस्ताक्षर - ***मंजुश्री****)*

कहानी

सिर्फ़ आधे घंटे के लिए !

अंशु जौहरी

कामना की कच्ची कोपल, बिना बीज की बेल, बिना पानी की पनपती पंखुड़ियां, बिना जड़ों का जंगली वृक्ष... अंतरा उसके अस्तित्व को नकारती है. “कुछ नहीं है यह. कुछ भी नहीं...” वह निर्ममता से उसे भूल भुलैया की काल कोठरी में डाल देती है पर वह ठहाका लगाते हुए, हर बंधन को तोड़ कर एक अमर प्रेत-सी उसके आगे खड़ी हो जाती. उसे कुछ सुकून मिलता है यह सोचकर कि सिर्फ़ वो उसके उपहास उड़ाते हुए ठहाकों को सुन सकती है, सिर्फ़ उसका एक भाग उस ठहाके के मर्म को समझ सकता है. अंतरा के माथे पर पड़े बल कुछ ढ़ीले पड़ते हैं. कोई कितनी देर अपने आप से नाराज़ रह सकता है? एक गहन उदासी, हल्की-सी थकान के साथ उसके अंतर को छू जाती. तीन बज गये हैं. बच्चों को स्कूल से लाने का समय हो गया था. वह हौले से की-होल्डर से कार की चाबी उठाती है परंतु पूरा का पूरा की-होल्डर एक ढिढाई के साथ कील की गिरफ़्त से निकलकर ज़मीन पर गिर पड़ता है और चाबियों का एक झनझनाता शोर घर के सन्नाटे में गूंज उठता है जैसे किसी भद्दे मज़ाक पर हंस रहा हो. अंतरा झुक कर की-होल्डर को उठाकर नियत स्थान पर टांगती है, जहां से उसे गिरने की धृष्टता नहीं करनी चाहिए थी. यही उसका काम था. हर चीज़ को उसके नियत स्थान पर रखना और रखने के पहले चीज़ों को घर में बिखेरना.

बिखरा हुआ घर अपना-सा लगता है. कम ही लोग समझ पायेंगे उस नीरस उबाऊपन को जो व्यवस्थित घर के हमेशा व्यवस्थित रहने के साथ जुड़ा होता है ...साफ़ ...परिपूर्ण... अनुशासित... बिना किसी बिखराव के. इस मर्यादित व्यवस्था में उसका जी अधिक घबराता था. वह उसे और अधिक याद आता था, जब उसे लगता कि उसके घर को भी उसकी ज़रूरत नहीं महसूस होती थी. वह एक भूखे घड़ियाल की तरह घर से निकल कर बच्चों को स्कूल से लाने के लिए निकल पड़ती है. वो अब भी उस उम्र में थे जब बच्चे अपनी मां का कहा सुनते हैं. परेशानी अंतरा को होती थी उन्हें अपना एकजुट ध्यान देने में.

उसकी बेटियां उसकी ख़ामोशी के प्रतिकूल आज ज़्यादा चहक रही थीं. यह रोज़ का अनुष्ठान था — कार में घुस कर सीट बैल्ट लगाते हुए दोनों में होड़ लग जाना.

“मम्मा आज पता है क्या हुआ?”

“नहीं मैं बताऊंगी. आज मेरी पहले बताने की बारी है.”

“पर मेरी बात ज़्यादा ज़रूरी है.”

“उससे कुछ नहीं होता. मेरी बात भी ज़्यादा ज़रूरी है.”

अंतरा बिना टोके कुछ देर दोनों के इस झगड़े का और अपने छोटे से क्षणिक महत्व का लुत्फ़ उठाती थी जिसके अंत में उसे न्याय करना होता था.

“बताओ मम्मा, कौन पहले बतायेगा आपको अपनी बात?”

पर आज दोनों के पास अपनी-अपनी सफलताओं की ख़ुशियों से भरे संतुष्ट, निजी से कारण थे.

“मम्मा मुझे कोरस में दो-दो घंटियां दी हैं म्यूज़िक टीचर ने. ये नयी टीचर पुरानी वाली से ज़्यादा अच्छी है.

इनको सही टैलेंट की परख है. पुरानी वाली एकदम खडूस थी.” छोटी वाली ने लहकते हुए कहा.

“और मम्मा मेरा निबंध ‘डार निबंध प्रतियोगिता’ के लिए चुन लिया गया है.” बड़ी वाली का स्वर तृप्ति से सराबोर था. अंतरा को अंदर ही अंदर एक साथ दो जीतों को भोगने का आभास हुआ. वह ख़ुश थी कोरस में दो घंटियों को पाकर और ‘डार निबंध प्रतियोगिता’ को जीत कर. उसकी दोनों बेटियां उसके भीतर जिया करती थीं और उनकी हर ख़ुशी, दुःख और गर्व उसकी ख़ुशी, दुःख और गर्व में बदल जाया करते थे. बेटियों के साथ वह कुछ क्षणों के लिए, कुछ लंबे क्षणों के लिए उसे, उसकी उपेक्षा और अपने व्यक्तिगत कारागृह को भूल जाती थी.

उसकी दोपहर की व्यस्तता पूर्व नियोजित थी. उसे लेकर उसके मन में कोई उत्सुकता नहीं थी. बच्चों को स्कूल से घर ले जाकर नाश्ता कराना था, जिसके बाद उनकी ‘बॉलीवुड डांस क्लास’ थी, उसके बाद ‘कुमोन’ की. उसने सोचा था कि जब उनकी क्लास होगी तब वह सब्ज़ी और किराना ख़रीद लेगी और उसके बाद आधे घंटे की वॉक कर लेगी. यह ज़रूरी था सेहत के लिए और अच्छी सेहत ज़रूरी थी लंबी ज़िंदगी के लिए. जिंदगी कितनी लंबी होनी चाहिए यह एक मूलभूत प्रश्न था और क्यों, यह उससे भी अधिक महत्वपूर्ण. ये प्रश्न उसने अपनी अर्द्धजागृत बौद्धिक अवस्था के विमर्श के लिए निलंबित कर दिये.

उसकी बेटियों ने घर जाते ही टेबल पर उसके द्वारा करीने से लगाया नाश्ता पेट में डाला, फिर वे कपड़े बदल कर तैयार हो गयीं. एक मशीनी मानसिक शक्ति के साथ बाक़ी की निर्धारित दिनचर्या को एक समर्पित लगन के साथ पूरा करके रात को ११ बजे वह थकान से बुझी बिस्तर की गोद में समा गयी. ठीक वैसे, जैसे एक बड़ी लहर तट पर अपना सर्वस्व बिखेर देती है, मगर तट उसकी बूंद-बूंद को बड़े प्यार से समेट कर, उसे वापस समुद्र की अथाह जलराशि में एक और दिनचर्या को निभाने के लिए, वापस उड़ेल देता है.

उसकी परेशानी मामूली-सी थी — बाथरूम के दरवाज़े के पीछे हुक पर टंगे एक गीले तौलिये की तरह जिसे वहां टांग कर कोई उसके बारे में भूल जाये. सघन अंतरिक्ष का अंधकार उसके चारों तरफ़ बिखरा हुआ था जब उसकी आंख अपने आप खुल गयी थी. टेबल पर रखी घड़ी का हल्का हरा उजाला ख़ामोश रात से भरे उस कक्ष में फैला हुआ था. उसने घड़ी की ओर दृष्टि डाली तो समय था तीन बज कर उन्नीस मिनट. उसने पुनः सोने के लिए आंखें मूंद लीं पर नींद एक लापरवाह परी की तरह किसी अनजाने से देश में गुम हो गयी थी, तब जब उसको उसकी सख़्त ज़रूरत थी. उसे दूसरे कमरे से उसके खर्राटों की आवाज़ आ रही थी. बच्चियों के लिए यह एक सामान्य-सी बात थी. उन्होंने बचपन से मम्मा को इस कमरे में और पापा को दूसरे कमरे में सोते देखा है. यह उनके लिए इतनी सामान्य बात थी कि उसे सोचकर वह शर्मसार हो उठती थी.

परिचय

हार्डवेयर इंजीनियर

: लेखन :

कविता, कहानी, नाट्य लेखन, नाट्य निर्देशन तथा चित्रकारी.

१९९८ में इंटरनेट पर ‘उद्गम’ नाम की हिंदी की साहित्यिक वेबज़ीन की शुरुआत तथा २००४ तक संपादन. ‘उद्गम’ विश्व की सर्वप्रथम हिंदी वेबज़ीनों में से एक; भारत, अमेरिका तथा कैनेडा की पत्रिकाओं में कविताएं तथा कहानियां प्रकाशित. जिनमें कादंबिनी, वागर्थ, कथाक्रम, वर्तमान साहित्य, समकालीन सरोकार, हिंदी जगत, विश्वा, सृजन गाथा, साहित्य कुंज उल्लेखनीय हैं.

: प्रकाशन :

‘खुले पृष्ठ’ (खंड काव्य), ‘शेष फिर’ (कहानी संग्रह) ‘बूंद का द्वंद्व’ (कविता संग्रह) ‘अदृश्य किनारा’ (कहानी संग्रह).

- अंग्रेजी नाट्य ‘दि काइट एंड द स्वान’ तथा ‘मॉमूस मॉम’ का जुलाई २०१० में तथा हिंदी नाटक ‘तलाश वजूदों की’ (सहलेखन श्री लोकेश जौहरी) का २००१ में कैलिफ़ोर्निया में मंचन.

२००४ में सैन होजे, कैलिफ़ोर्निया में ९६.१ एफ़. एम. से लोकप्रिय हिंदी रेडियो प्रोग्राम ‘उपहार’ का प्रसारण और संचालन.

“ये इतना सुंदर कमरा किसका है?”

“हमारा!” वो दोनों एक सुर में गर्व से कहतीं जब कोई मेहमान घर आता था.

“...और ये?”

“ये पापा का है.”

“पापा का!”

उनके स्वर का अचंभा अंतरा की आंखों में एक किरकिरी की तरह चुभता, जब उनकी टेढ़ी निग़ाहों के संदेहात्मक प्रश्न, एक व्यंग्यात्मक मुस्कुराहट को दबाते हुए सामान्य दिखने का प्रयत्न करने लगते थे. वह ताड़ लेती थी उनकी साजिशों में फंसी मुस्कराती हुई, मज़ा लेती हुई सोचों कों. लेकिन इस बात की त्रासदी यहीं समाप्त हो जाती तो कितना अच्छा होता, पर नहीं. उसका मुंह छिपाना बंद भी नहीं हो पाता था जब बच्चियां बड़े उत्साह और गर्व से मास्टर बैडरूम की ओर इशारा करके कहतीं — ''ये मम्मा का रूम है. सबसे बड़ा वाला.'' उनके स्वर में टपकती पवित्रता के बारे में सोचकर उसे वितृष्णा के कारण उबकाई आ जाती, पर वह चुप रहती. बच्चियों के कुछ बड़े होने पर उसने उन्हें समझाया कि जब मेहमान घर आते हैं तो उनके साथ सलीके से पेश आते हैं और सलीके का एक बहुत बड़ा पहलू था घर की अंदरूनी बातों का बाहर वालों के सामने ज़िक्र न करना, ख़ासकर इस बात का कि घर में कौन कहां सोता है.

''ये हमारी आपस की बात है. हमारे परिवार की. हम इसके बारे में किसी बाहर वाले को क्यूं बतायें?''

उन्हें परिवार की संकल्पना, उसके निजत्व और उस निजत्व के प्रति निष्ठा होने की बात समझ आयी. पर बात समझाने की जितनी थी उससे ज़्यादा अंतरा को फ़िक्र इस बात की थी कि बड़े हो जाने पर क्या उनकी यादों में यह बात कहीं बैठी न रह जाये कि मम्मा–पापा अलग-अलग कमरों में सोते थे. और तब जब उनका ख़ुद का घर होगा, जब वो अंडकोशों के भीतर सोते इस 'सामान्य' सच की असामान्यता को जानेंगी, तब विगत के रिश्तों में वो उसकी अजीब–सी ज़िंदगी के बारे में क्या सोचेंगी? यदि उनका जीवन भी उसकी तरह ही हुआ तो? सोच कर एक भयानक सिहरन उसकी देह में दौड़ जाती. तब उसके अंतर्मन का एक भाग ज़ोर से उसके दूसरे भाग पर हंसता. शादी! ...जाने उनकी पीढ़ी के लोग शादी करेंगे भी कि नहीं? इस परिदृष्य के सत्य होने की संभावना पर उसका जी एक साथ ख़ुश और उदास हो जाता. विवाह कैसा छल भरा भ्रम है, एक मायाजाल.

उसका कमरा हर रोज़ की तरह ठंडी हवा में सांस ले रहा था. ठंड बढ़ गयी थी. उसने पास पड़ा कमफ़र्टर कस कर अपने शरीर पर लपेट लिया जैसे वो किसी और की देह हो. इस देह में वो उसका चेहरा नहीं जोड़ पा रही थी. उसे लगा उस कसी हुई काल्पनिक देह को उसकी प्यास थी, एक आकर्षण, एक असंतुष्ट-सी जंगली तृष्णा. ''छि! यह लिप्सा है, सिर्फ़ लिप्सा. गर्त जैसी.'' अगले ही पल उसने घृणा से कमफ़र्टर अपनी देह से खींचकर अलग कर दिया जैसे उससे कोई घोर पाप हो गया हो. स्वेद की बूंदें उसके माथे पर छलछला आयीं.

''नहीं, हो सकता है कि हर घर में यह होता हो. दरअसल यही सबकी सच्चाई हो. यही 'सामान्य' हो. लोग बस बाहर वालों के लिए प्यार में होने का नाटक करते हैं.''

''घोर लिप्सा!'' उसका अंतर फिर से चीख़ा था. पर जो भी हो, इस समय वह 'असामान्य' होने के सत्य को निष्काषित करने का हौसला नहीं जुटा पा रही थी.

□

डॉक्टर की क्लीनिक में टेबल पर लेटी वह अल्ट्रासाउंड टैकनिशियन की प्रतीक्षा कर रही थी. उसने देखा छत से एक रूफ़ हैंगर लटक रहा था जिसके महीन पारदर्शी धागों से छोटी-छोटी रंगबिरंगी गुड़िया लटक रही थी. तभी अल्ट्रासाउंड टैकनिशियन ने दरवाज़ा खटका कर घोषणा की, ''अल्ट्रासाउंड आज नहीं हो पायेगा. उपकरण में कुछ तकनीकी ख़राबी है.''

''तो इसका मतलब कि मुझे फिर से अपाइंटमेंट लेना पड़ेगा.'' उसने खीजे हुए स्वर में पूछा.

''दुर्भाग्य से हां, हमें खेद है. असुविधा के लिए माफ़ी चाहती हूं. पर उसे ठीक होने में समय लगेगा. तो आज तो संभव नहीं हो पायेगा.''

अंतरा ने एक झुंझलाहट से भरी आह के साथ उठने का उपक्रम किया तो उसने उसे रोक दिया.

''आपके डॉक्टर ने कहा है कि आपका चैकअप इसी कमरे में हो जायेगा. आपको दूसरे कक्ष में जाने की ज़रूरत नहीं है.''

उसके जाने के कुछ क्षणों के बाद डॉक्टर ने दस्तक दी. कमरे में घुसते ही सबसे पहले उसने उपकरण की ख़राबी के लिए माफ़ी मांगी. उसकी दोनों बेटियां उसी की देखरेख में जन्मी थीं. उसने उसके जीवन की दो जटिल गर्भावस्थाओं में उसका ख़ासा ध्यान रखा था. बड़ी वाली के समय उसे 'उच्च रक्तचाप' हो गया था और छोटी वाली के समय 'प्लासैंटा प्रिविया.'

डॉक्टर ने दस्ताने पहन कर नर्स को बुलानेवाला बटन दबाया, फिर उसने अंतरा से पूछा — ''कोई ऐसी स्वास्थ्य संबंधी नयी बात या परेशानी जो तुम्हें चिंतित करती हो?''

''नहीं, कुछ नहीं.''

''बच्चे कैसे हैं?'' उसने उसकी जांच करते हुए पूछा.''

''अच्छे हैं. मुझे दोनों टांगों पर नचाये रखते हैं.''

''ऐसे तो सब ठीक लग रहा है. तुम्हे इस साल 'पैप स्मियर' टेस्ट कराने की ज़रूरत नहीं क्योंकि पिछले साल ही हुआ था. मैं एक नज़र तुम्हारे इस फ़ॉर्म पर डाल लूं.''

उसके वार्षिक स्वास्थ्य और शारीरिक परीक्षा से संबंधित फ़ॉर्म को देखते हुए उसने कहा, ''तुम्हें और बच्चे चाहिए क्या?''

''नहीं तो!'' अचंभित अंतरा ने उत्तर दिया. फ़ॉर्म में तो ऐसा कोई प्रश्न नहीं था, न उसने कहीं ज़िक्र किया था.''

''...तो गर्भ निरोधण के लिए क्या करती हो? गोलियां लेती हो? तुमने कुछ लिखा नहीं है यहां.''

''नहीं, कुछ नहीं.''

''अरे! बच्चे नहीं चाहिए और कुछ नहीं?'' उसकी बूढ़ी, नीली आंखें हैरत से उसके चश्मे से बाहर निकल कर झांक रही थीं. ''तुम्हें पता है ऐसे ख़तरों से खेलने का क्या परिणाम होता है.'' वह मुस्कुराया था.

''अम्म... म्म... हम दोनों ही बहुत व्यस्त रहते हैं. समय ही नहीं मिलता कुछ करने का.''

कुछ उमड़ती त्योरियों के साथ उसने फ़ॉर्म पर झुकी मुंडी को ऊपर उठा कर पूछा था —

''आर यू सैक्स्युली ऐक्टिव?' सुनकर उसके कानों पर फिर से बम गिरा था. उसे हमेशा इस प्रश्न से अजीब सी कठिनाई होती थी. जब उससे पहली बार यह पूछा गया था तो मारे शर्म के उसके कान और मुंह लाल हो गये थे. एक बार एक भारतीय डॉक्टर मिला था तो उसने इसी प्रश्न को दूसरी तरह पूछा था.

''आप विवाहित हैं?'' उसने मान लिया था कि अमूमन विवाहित होने का अर्थ 'सैक्स्युली ऐक्टिव' होना होता है. पर अमेरिकन डॉक्टर इस तरह की परिकल्पनाओं के परे होते हैं और फिर किसी से यह पूछना कि वह विवाहित है कि नहीं एक 'निजी' प्रश्न है पर वो 'सैक्स्युली ऐक्टिव' है कि नहीं, यह नहीं.

''यैस.'' उसने जल्दी से उत्तर दिया और वहीं उसके मन ने विद्रोह किया था, ''झूठ! सफ़ेद झूठ.''

''तो मैं तुम्हारे लिए गर्भ निरोधक गोलियों का प्रिस्क्रिप्शन लिख देता हूं बशर्ते तुम कोई और तरीक़ा अपनाना चाहती हो या ऐसे ही रिस्क लेना चाहती हो. परेशानी तुम्हीं को होगी.''

''ठीक है, आप कृपया प्रिस्क्रिप्शन लिख दीजिए.'' वह किसी भी तरह जल्दी से इस संवाद से मुक्त होना चाहती थी.

''तुम उसी पुरानी फ़ार्मेसी से दवाएं ख़रीदती हो?''

उसने हां में मुंडी हिलायी.

''तो मैं उसी फ़ार्मेसी को प्रिस्क्रिप्शन फैक्स कर दूंगा. तुम लौटते हुए उठा लेना. तुम्हारे पिछले साल की अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट सामान्य थी. इस साल के अल्ट्रासाउंड के बाद हम चैक कर लेंगे कि वो बायीं ट्यूब में जो पानी था वह उतना ही है कि बढ़ गया है.''

एक अनजान-सी उदासी उसके मस्तिष्क पर छा गयी और उसने उसे छुपाने के लिए अपनी मुंडी नीचे झुका ली किंतु डॉक्टर की अनुभवी नज़रों ने ताड़ लिया.

''कुछ बताना या पूछना चाहती हो तो कहने में संकोच मत करो.''

''नही, कुछ ख़ास नही. ये जो पानी है ट्यूब में, इसमे कोई ख़तरे जैसी बात है क्या? यदि मान लें कि वो बढ़ा हुआ निकलता है तो? इसका कोई विपरीत प्रभाव हो सकता है क्या शरीर पर?''

''नहीं, मुझे लगता नहीं है कि ज़रा भी चिंता करने जैसा कुछ है. तुम्हारे परिवार में चूंकि ओवेरियन कैंसर की फ़ैमिली हिस्ट्री है तो हम हर साल सी-ए १२५ की जांच तो करते ही हैं, फिर अल्ट्रासाउंड भी करते हैं. मैं तुम्हें रक्त की जांच के फ़ॉर्म दे रहा हूं. उसके बाद तुम अल्ट्रासाउंड की तारीख़ पक्की कर लेना. मस्त रहो. अगली बार जब अल्ट्रासाउंड के लिए आओगी तब मिलते हैं. और जब तुम्हारी ब्लड टेस्ट की रिपोर्ट आ जायेगी तो मैं तुम्हें फ़ोन करूंगा.''

घर लौटते हुए वह अपनी लंबी आयु के प्रति आश्वस्त थी और जैसे उसकी लंबाई से परेशान भी. उसके भीतर एक तीव्र इच्छा जागी अचानक बहुत बीमार हो जाने की. ''उसके लिए, उसका ध्यान पाने के लिए, उसका!'' उसे, उसके ही

मन के आत्मबल ने वितृष्णा से धिक्कारा, ''कोई भी, कोई भी असफलता, कोई भी व्यक्ति संसार में इस लायक नहीं होता कि तुम उसके लिए अपने प्राण दे दो, जब तक कि उसमें स्वार्थ से परे, कुछ ऊंचा न बंधा हो, जिससे संपूर्ण मानवता का हित न जुड़ा हो.''

वह आत्महत्या और स्वपीड़ासक्ति (मैसोशिस्म) के लिए ज़ायज, उच्च और निस्वार्थ आवश्यकताओं के बारे में सोचने लगी. आयज़ैक न्यूटन ने अपनी ही आंख़ों में सुई चुभोकर, उससे दिमाग़ में उत्पन्न रंग संयोजन और उससे जन्मे पैटर्न का अध्ययन किया था. इतना ही नहीं आंखों में धंसी सुई की लंबाई बढ़ाने का उस पर क्या असर होता है, यह प्रयोग भी स्वयं पर किया था. क्या यह कारण ख़ुद को पीड़ा देने का ज़ायज कारण था? क्या आत्महत्या का ख़्याल अपने आप में एक मति भ्रंश, एक अबैरेशन नहीं था जो आपको उस जीवन का अंत करने को प्रेरित करता है जिसे बचाना ही आपकी देह के कण-कण का दायित्व होता है, जो सेल्फ़ प्रिज़र्वेशन के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आपके बिना जाने ही जीवाणुओं से लड़ती है, प्रजनन की ओर मोड़ती है. क्या इस तरह के मति भ्रंश जानवरों को भी होते हैं? उसने कहीं पढ़ा था कि व्हेल, समुद्री तटों पर आकर लेट जाती है. खाना–पीना त्याग कर वहीं अपना जीवन समाप्त कर देती है. पर इस तरह का नकरात्मक विचार, वो भी इसलिए कि किसी का ध्यान पा सके या जो किसी भौतिक ज़रूरत के अधूरेपन की कुंठा से जन्मा हो, जहां प्रजनन भी लक्ष्य नहीं था, वह कैसा बेतुका और हास्यास्पद था. उसे लगा लोग प्यार को ज़बरदस्ती का महत्व देते हैं, चुंबन नाटकीय होता है और वासना को ज़रूरत से कहीं ज़्यादा तूल दिया जाता है.

उसे खुली सांसों और कैफ़ीन की आवश्यकता महसूस हुई और उसने 'स्टारबक्स कैफ़े' पर रुकने का निर्णय लिया. 'कैफ़े लाते' का ऑर्डर देकर, कॉफी की प्रतीक्षा में वह 'वाट्स ऐप' पर अपने मैसेज़ पढ़ने लगी जो ज़्यादातर उथले और बचकाना चुटकुलों से भरे पड़े थे. फ़ेसबुक के पन्ने ख़ुशनुमा, मुस्कराती तस्वीरों की बाढ़ से लबालब थे और उन सभी पर बिलकुल एक सरीखे लोगों के दस्तावेज़. 'क्यूट पिक', 'गौरज़ियस', 'हॉट'— गोया कि विश्व में कोई भी ऐसा नहीं था जो 'गौरज़ियस' न था. जहां ऐसे संबंधों की भरमार थी कि लोगों को जाने बिना उनकी ज़िंदगी में झांकने का मौक़ा मिल जाता हो, तो आज के इस युग में वो लोग कहां जायें जो फ़ोन, फ़ेसबुक के परे, एक कॉफी के मग के साथ अंतरंग संवाद कर सकें. तभी कॉउंटर पर उसके नाम के परिवर्तित स्वरूप को पुकारा गया.

''अंटरा...'' वह अपनी कॉफी लेने के लिए उठ खड़ी हुई, जब अचानक सामने आये व्यक्ति के एक आग्रह पर उसे रुकना पड़ा.

''यदि आप बुरा न मानें तो क्या मैं यहां बैठ सकता हूं? सारी टेबलें भरी हुई हैं और मुझे कुछ बहुत ज़रूरी ईमल करने हैं.'' उसके वैचारिक क्रम में एक बाधा पड़ी. सामने खड़ा अनजान व्यक्ति संभ्रात दिख रहा था. उम्र होगी चालीस से पैंतालीस के बीच, गठा हुआ शरीर और मध्यम क़द. उसका हल्का गुलाबी चेहरा, हल्के से अधपके बालों से भरी मूंछों और चिपकी हुई दाढ़ी और नीली-ग्रे आंखों में बिछी गुज़ारिश से दमक रहा था. उसके चौड़े कंधे पर टंगे लैपटॉप के बैग के बोझ से उसकी शर्ट दाहिनी तरफ़ को खिंच कर एक 'वी' के आकार में उसकी छाती के घुंघराले बालों को उजागर कर रही थी. उसकी नीली सफ़ेद धारियों वाली शर्ट की पारदर्शी जेब मे पड़ा सैल फ़ोन गुड़गुड़ा रहा था, जिसकी कोहनी तक मुड़ी हुई लापरवाह बांहों को समेटे उसके घने केशों वाले हाथों से पुरुषार्थ टपक रहा था. तभी कॉउंटर पर उसके नाम को फिर पुकारा गया — ''अंटरा'' और वह अपने निर्लज्ज अवलोकन से कुछ लज्जित होकर, उसके आग्रह के जवाब में ''अवश्य'' कह कर कॉफी लेने कॉउंटर की ओर बढ़ गयी थी.

जब वह कॉफी लेकर लौटी, तो उस जगह जो कुछ क्षण पहले तक केवल उसकी थी, वहां वह आराम से स्वयं को स्थापित कर चुका था. टेबल पर उसका लैपटॉप ठीक उसके सामने बिछा हुआ था और उसकी दक्ष उंगलियां तेज़ी से की-बोर्ड पर दौड़ रही थीं. टाइप करते हुए उसके चेहरे का भाव कभी तीव्र से शांत होता, कभी शांत से तीव्र. उसकी कॉफी और फ़ोन उसके लैपटॉप के बायीं ओर रखे थे जिस ओर उसका ध्यान कुछ कम था. अंतरा कॉफी की चुस्कियों के बीच उसे टाइप करते हुए देखने की धृष्टता करने लगी. उसके टाइप किये गये शब्द जो उसकी सोच की पकड़ से निकल कर वाक्यों को बुन रहे थे! उसकी सरसराती दृष्टि जो उन वाक्यों का मूल्यांकन करती हुई उसके चेहरे को अलग-अलग भाव से भर देती थी. अंतरा को उन शब्दों

को जानने की जिज्ञासा हुई. तभी मन के भीतर एक बीप-बीप करती हुई चेतावनी कौंधी थी, एक बेशर्म अलार्म घड़ी की तरह जो उसे नींद से जगाने का बार-बार उपक्रम कर रही थी. उसने उसे सुन कर यों ही बजने दिया और उसे अपलक देखती रही जैसे एक भूखी छिपकली एक निश्चिंत से शिकार की ओर धीरे–धीरे सरक-सरककर जाती है. अंतरा ने अपने अंदर एक विद्रोह को महसूस किया और उसकी अनियंत्रित उच्छृंखलता में वह एक निडर से सुख को भोगने लगी थी. एक अनजान व्यक्ति को देखने की साधारण-सी क्रिया ने उसके तीव्रता से धड़कते हृदय को असाधारण ढ़िठाई और रोमांच से भर दिया था.

''मुझे इस अशिष्टता के लिए माफ़ करें. मुझे बस थोड़ा-सा समय और चाहिए.'' उसके वाक्य को सुनकर वह चौंक कर सकते में आ गयी थी. यह उसने उससे नहीं कहा था. उसने तुरंत उसके कानों की तरफ़ देखा. पर उनमें फंसा न तो कोई हैडसैट दिखाई दिया, न कोई ब्लूटूथ डिवाइस जो ये दर्शाये कि वह किसी और से बात कर रहा है. अक्सर उसके साथ ऐसा होता है कि ग्रोसरी स्टोर में उसे लगता है कि कोई उससे पीछे से कुछ कह रहा है. जब वो पीछे मुड़ कर देखती तो लोग कानों में हैडसैट या ब्लूटूथ डिवाइस लगाये सब्ज़ी ख़रीदते हुए, फ़ोन पर ज़ोर ज़ोर से अप्रत्यक्ष लोंगों से बातचीत में मशगूल दिखते. उसकी ग़लतफ़हमी भंग हो जाती थी. पर यहां ऐसा नहीं था.

''क्षमा करें. क्या आपने मुझसे कुछ कहा?'' वह पूछ बैठी.

''जी, बिलकुल आपसे ही कहा. मेरे सामने और तो कोई बैठा नहीं है.''

''प्लीज़! सिर्फ़ इसलिए कि मैंने आपको यहां बैठने की अनुमति दे दी, आप अपने आपको मुझसे बात करने के लिए बाध्य न समझें.'' वह हैरान थी अपने आप पर, जिस इत्मिनान से उसने उसको पलट कर जवाब दिया था उससे.

''अब जिस तरह से आप मुझे सामने बैठ कर घूर रही हैं, उससे बाध्य तो होना पड़ेगा ना मुझे.'' यह कहते वक़्त उसकी दृष्टि स्क्रीन पर स्थिर थी और होठों पर एक शरारती मुस्कान तैर रही थी.

अंतरा के बिना जाने उसकी चोरी रंगे हाथों पकड़ी गयी थी. उफ़्फ़! उसने देख लिया था उसे और अचानक सीमाएं तोड़ने के नैतिक उल्लंघन के अहसास ने उसे अपराधबोध से भर दिया. उसने अपने होंठ काटकर तुरंत खिड़की के बाहर नज़र टिका दी थी. पेड़ की मंथर गति से झूलती डाल पर एक कौवा बैठा था जिसने अपनी गर्दन टेढ़ी कर उसे कुछ अजीब ढंग से देखा था.

''प्लीज़! दूसरी तरफ़ मत देखिए. मुझे आपके देखने से कोई परेशानी नहीं. मुझे दो मिनट का समय दीजिए. फिर हम इत्मिनान से एक दूसरे को देखते हुए बात कर सकते है.''

''पर मुझे आपसे बात नहीं करना. मेरी कॉफी ख़त्म हो गयी है. मुझे निकलना है. अब यह पूरी मेज़ आपकी.''

''हो गया ख़त्म.'' उसके जाने के इसरार के जवाब में, उसने लैपटॉप बंद करते हुए कहा. ''मै एंड्रयू, बहुत धन्यवाद. आप बहुत उदार हैं कि आपने अपनी...''

''...टेबल आपके साथ बांटी. कोई हर्ज़ नहीं...''

''टेबल नहीं! शुक्रगुज़ार हूं आपकी उस एकटक दृष्टि का. ख़ुद अपनी नज़रों में उठा हुआ सा महसूस कर रहा हूं.''

अंतरा का चेहरा लाल चैरी-सा हो गया था. उसे लगा किसी भी प्रकार की सफ़ाई या बहाना उसकी बेजोड़ बुद्धिहीनता का परिचायक होगा. जैसे उस धृष्ट हरकत को स्वीकारने के अलावा उसके पास और कोई चारा न था. वह अपने भीतर के दुःसाहस पर सन्न थी और चिंतित भी, जो उसे एक तरह के विद्रोह से भर रहा था कि वह अपने ऊपर लगाये गये उस आरोप को स्वीकार कर ले, पूरी ईमानदारी के साथ. यह उसका नया रूप था. यह वह नहीं थी या वह यह थी?

''आपका नाम जानना चाहता हूं.''

''नाम?''

''हां, जिससे बाक़ी की दुनिया आपको संबोधित करती है.''

''अंतरा...''

''अंतरा, अंतरा माने?''

''क्यूं पूछ रहे हैं?''

''नयी चीज़ों के बारे में जानने की स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति.''

''चीज़?''

''तो अंतरा कोई चीज़ नहीं है?''

''नहीं वो संगीत में... उसका एक भाग होता है... जो गीत होता है... उसमें मुखड़ा होता है, फिर अंतरा... यूं

समझाना मुश्किल है. अर्थ विकिपीडिया पर मिल जायेगा.''

'नहीं! उसकी ज़रूरत नहीं है. तुमने जो बतलाया उतना ही काफ़ी है मेरे लिए. धन्यवाद. तुम भारत से हो.''

''मेरी भूरी चमड़ी, मेरी एथनिसिटी के बारे में सब बयां कर देती है. नहीं?''

''तुम भूरी नहीं हो, 'पेल' हो.''

''पेल!'' वह हंस पड़ी, ''हमारे यहां 'पेल' का मतलब होता है कुम्हलाया हुआ.''

''मेरा शब्दों का ज्ञान काफ़ी निम्न स्तरीय है. माफी! 'पेल' एक सकारात्मक परिदृष्य में जैसे 'उजला'. वैसे मुझे लग रहा है कि तुम मुझे शब्दविहीन कर रही हो.''

''चलो यह अच्छा है. मुझे अपनी नयी योग्यताओं के बारे में पता चल रहा है आज.''

''...तो अंटरा तुम क्या अक्सर यहां आती हो?''

''नहीं, कभी कभार!''

''ओह! तो आज मेरा भाग्य मेहरबान था मुझ पर.''

''शायद.'' वह मुस्कुरायी. ''...और तुम? तुम अक्सर यहां आते हो?''

''हां, ये मेरी सर्वप्रिय जगह है. वो क्या है कि मैं घर से ही काम करता हूं. तो घर की एकरसता से तंग आकर कुछ घंटे यहां से काम कर लेता हूं.''

''मुझे लगता है कि तुम्हें अब अपना काम करना चाहिए. तुम्हारा ध्यान भंग किया, क्षमा चाहती हूं.''

''वो क्या है कि अगर ध्यान भंग नहीं हुआ होता, तो मुझे पता ही नहीं चलता कि मुझे उसकी कितनी सख़्त ज़रूरत थी. तो थैंक्स. तुम यहां पास में रहती हो?''

''हां, ज़्यादा दूर नहीं.''

''कहीं काम करती हो?''

''करती थी. दूसरी बेटी के बाद ब्रेक लिया था मगर फिर वापस काम पर जाना नहीं हो पाया.''

''तुम्हारी दो बेटियां हैं?''

''हां.''

''कितनी बड़ी हैं तुम्हारी बेटियां?''

''बारह और आठ.''

''तो अब तो तुम काम पर जा सकती हो. अब तो वो बड़ी हो गयी हैं.''

''पता नहीं. जंग-सी लग गयी है. कौन रखेगा मुझे?''

''क्या करती थीं तुम?''

''ग्राफ़िक्स डिज़ायनर थी. तब से, जब मैं काम करा करती थी, टैक्नोलॉजी जाने कहां से कहां पहुंच गयी है. मैंने तो आस ही छोड़ दी.'' कुछ विचित्र बात थी कि इतने सालों बाद वह विगत के उस अहाते में जा खड़ी हुई थी जब वो काम करा करती थी, बच्चे नहीं थे, शादी नयी-नयी थी, उमंगें अपनी तरुणाई पर थीं, एक आत्मसम्मान था जो उसे आज की तरह निरर्थक होने का आभास नहीं होने देता था. ''मुझे अब चलना चाहिए.''

''क्यों? घर पर तुम्हें कुछ काम है या ज़बरदस्ती के अपराधबोध से अचानक मुक्त होने का मन हो गया है?''

उसके स्पष्ट अभियोग से विस्मित होकर उसने पहली बार तीव्र दृष्टि से उसकी आंखों में देखा था. ''कौन है यह? वह इसे जानती तक नहीं और क्यों वह अपनी निजी ज़िंदगी इसके साथ बांट रही है? क्या पता यह कोई चोर-उचक्का हो, या सीरियल किलर या कोई और.''

''मैं अपने काम से आधे घंटे का अवकाश ले सकता हूं. उसके बाद तुम जा सकती हो, अगर तुम्हारा मन हो तो. यहां का 'चीज़ डैनिश' मुझे बहुत पसंद है. तुमने कभी खाया है?''

''नहीं. मुझे भूख नहीं है.''

''ठीक है. अब इतनी विनम्रता की तो तुमसे उम्मीद रख सकता हूं कि तुम मेरा 'चीज़ डैनिश' ख़त्म होने तक मेरे साथ बैठोगी.''

उसके अधिकार भरे आग्रह ने उसे बुत बना दिया था. वह चाह कर भी प्रतिकार न कर सकी.

''क्या मैं कल भी तुमसे मिल सकता हूं? इसी समय.''

''कुछ कह नहीं सकती. मैंने तुम्हें बताया था कि मैं यहां कभी–कभार ही आती हूं.''

''तो हमारी आज की बातचीत इस योग्य नहीं कि उसे आगे बढ़ने का अवसर दिया जाये.''

''तुम्हें पता है ना कि मैं शादीशुदा हूं.''

''हां, और मैं तुमसे कोई शादी करने को नहीं कह रहा हूं. सिर्फ़ आधे घंटे का संवाद, एक कप कॉफी के साथ.''

''मेरा पक्का नहीं है. मेरी प्रतीक्षा मत करना.''

''तो अंटरा! क्या मैं तुम्हारे नाम का सही उच्चारण कर रहा हूं?''

''काफ़ी नज़दीक है.''

''हां तो अंटरा, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा नहीं करूंगा. मुझे तुम्हारे साथ बात करना अच्छा लगा. कल यदि खाली हो तो, आधे घंटे के लिए आ जाना, इसी समय, मैं यहीं रहूंगा.''

लौटते हुए उसे लगा कि नीले नभ के नीचे उसके कंठ से एक मधुर गीत सभी दिशाओं को अनुगुंजित करने को आतुर था. वह ख़ुश थी सिवाय कांटे सी चुभती एक उदासी के, जो इसलिए उदास थी क्योंकि वह ख़ुश थी. अपने विजन घर के एकांत में प्रवेश कर वह एक आर्द्र भाव लिये उस कमरे में आ खड़ी हुई जो उसके पति का था. चारों तरफ़ तकनीकी क़िताबें, मेज़ पर रखा लैपटॉप, इलेक्ट्रॉनिक गैजट, राऊटर की जलती बुझती हरी लाईट, ज़मीन पर रेंगते तार, सब एक आगंतुक से उसके वहां होने का कारण पूछ रहे थे. वह सब कुछ वैसा ही छोड़कर बाहर आ गयी, उन बिखरी चीज़ों को उनके नियत स्थान पर रखे बिना. उसने अपने आपको उस छोटे से महत्व के बहाव में स्वतंत्र बहने को छोड़ दिया जहां किसी को उससे बात करना अच्छा लगा था. इस नये 'महत्व' ने उसके सोये हुए स्वाभिमान को हौले से जगाया था. उसके फिर मिलने के आग्रह ने उसकी कुम्हलायी हुई निज जागरूकता को पुनः पल्लवित किया था. अगले दिन उसने अपने आपको ऐंड्रयू से मिलने से रोका नहीं.

''क्या मैं इस क़ाबिल हूं कि आपसे आपका टेलीफ़ोन नंबर मांग सकूं?''

''काबिल तो आप बहुत हैं मगर मेरा नंबर आपके फ़ोन की मैमोरी चिप में जगह लेने लायक नहीं है.''

''क्या मुझे इस बात का फ़ैसला करने की स्वतंत्रता है?''

''नहीं.'' अंतरा ने हंसकर कहा. ''क्यूं चाहिए मेरा नंबर?''

''तुम्हें अड़चन क्या है?''

''सिर्फ़ और सिर्फ़ आधा घंटा, एक कप कॉफी के साथ. उससे ज़्यादा कुछ नहीं.''

''अच्छा. अब समझा.'' वह गंभीर हो गया था.

अगले पंद्रह मिनट दोनों अपनी-अपनी चुप्पियों के घेरे में बंद, एक दूसरे के सामने बैठे हुए कॉफी की चुस्कियां लेते रहे और अपने-अपने दायरों में सबसे छुप कर, छुपा कर एक दूसरे के बारे में सोचते रहे.

जब वह जाने के लिए उठी तो वो कहे बिना रह न सका — ''तुम ना, आधे घंटे से कहीं ज़्यादा समय ले चुकी हो मेरा.''

''वैसे, मेरी भी कुछ-कुछ यही शिकायत है. सच कहूं, मेरा कोई भरोसा नहीं है. कभी भी आना बंद कर सकती हूं. कहीं ग़ायब भी हो सकती हूं, और अगर मैं ग़ायब हो जाऊं तो मुझे ढूंढने की कोशिश मत करना.''

''ये तुम्हारे लिए सिर्फ़ एक मज़ाक है!''

''नहीं. इससे पहले मैंने कभी किसी चीज़ को इतनी गंभीरता से नहीं लिया. कभी समर्पण के साथ नहीं निभाया.''

''समर्पण के साथ निभाना किसे कहते हैं?

''बताना मुश्किल है. तुम्हें समझ आयेगा. तुम उसे महसूस कर लोगे.''

''मुझे तुमसे बात करना अच्छा लगता है.''

''मुझे भी.''

''मुझे डर है कि कहीं मुझे तुमसे प्यार न हो जाये.''

वह हंस पड़ी — ''प्यार किसे कहते हैं?''

''बताना मुश्किल है. तुम्हें समझ आयेगा. तुम उसे महसूस कर लोगी.'' वह मुस्कुराया था.

''प्यार का मतलब होता है किसी के साथ इतना ज़्यादा रहने की ख़्वाहिश करना कि फिर उससे ऊब हो जाये.''

''अब ये कौन सा मतलब निकाल कर लायी हो?''

''हम अपने समीकरण से 'ज़्यादा मिलने' को बाहर रखेंगे. अब मुझे जाना होगा.''

वह हर दिन उसे छोड़ कर चली जाती, बिना अगले दिन मिलने का वायदा किये हुए. और हर दिन आधे घंटे को उससे ऐसे मिलती थी जैसे कि अगले दिन, कोई अगला दिन नहीं होगा.

□

''क्या मैं एंट्रा से बात कर सकता हूं?''

''अंतरा बोल रही हूं.''

''मैं डॉक्टर कैंट, एंट्रा. कैसी हो?''

''बिलकुल ठीक हूं डॉक्टर कैंट.''

''वो तुम्हारी ब्लड रिपोर्ट आ गयी है.''

''सब ठीक तो है डॉक्टर?''

(शेष पृष्ठ ५१ पर देखें)

कहानी

मलबों के ढ़ेर से

लक्ष्मी रानी लाल

मेघा के मायके चले जाने से मलय के मन में अजीब-सी उदासी घिर आयी थी. मन कहीं लगता नहीं, और कहीं जाने की इच्छा भी नहीं होती. अंत में उसने नोएडा-उत्सव देखने का निर्णय ले लिया.

नोएडा-उत्सव को देखने भीड़ उमड़ आयी थी. क्रय-विक्रय करने की होड़-सी लगी थी. मलय उस भीड़ से निकल आया. मेघा के मायके चले जाने से एक अजीब-सा सूनापन उसमें भर आया. उस जड़ता भरी घुटन को दूर करने के लिए ही वह नोएडा-उत्सव देखने चला आया था.

जब किसी तरह से मन नहीं लगा तो वह 'बरिश्ता' में कॉफी पीने चला गया. जब भी वह मेघा के साथ यहां आता पलक झपकते ही समय बीत जाता. मेघा की बातों को सुनकर उसे अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती. बातों के पिटारे से वह एक से एक सरस प्रसंगों को जब सुनाती तब उसकी वाकपटुता पर मलय मुग्ध हो उठता.

मेघा वर्ष में एकाध बार अपने मायके हो आती थी. इस बार भी मलय ने उसे रोकने की कोशिश की तो उसने यह कहकर उसे मना लिया कि वियोग से प्रेम में वृद्धि होती है एवं एकनिष्ठता होती है. इस बिछोह की पीड़ा के अंदर भी आनंद की सरिता बहती है. मेघा की तर्कसंगत बातें सुनकर वह उसके आगे हथियार डाल देता.

मेघा की यादों में डूबा वह कॉफी की चुस्कियां ले रहा था तभी एक परिवार पर उसनी निग़ाह पड़ी. बच्चों को वहां ऊब हो रही थी और उनकी मां उन्हें अपनी बातों में उलझा रही थी. मलय को वह चेहरा कुछ पहचाना-सा लगा. यादों की परतें स्वत: उठने लगीं और फिर मलय के होठों पर प्रफुल्ल मुस्कुराहट खिलने लगी. इस तरह की उन्मुक्त हंसी यामिनी ही बिखेर सकती है.

वर्षों के इस लंबे अंतराल में इतने बिखराव के बाद भी यामिनी के सौंदर्य में कमी नहीं आयी है. दो बच्चों की मां होने पर भी रूप-रंग और भी निखर उठा है. चेहरे पर लटकती केश-राशि को वह बेहद सलीके से अपने कोमल हाथों द्वारा पीछे कर देती.

मलय को अतीत में लौटते फिर देर नहीं लगी. किसी के सिर्फ़ व्यवहार का आकलन करके उसके प्रति किसी विचार को कायम करने की ग़लती इंसान को कभी बेहद भ्रमित कर देती है. इस बात का अनुभव जब से मलय को हुआ है उसकी ज़िंदगी की दिशा ही बदल गयी.

मलय का दफ़्तर घर से काफ़ी नज़दीक था. उसे दफ़्तर जाने के लिए कभी किसी सवारी का मोहताज नहीं होना पड़ा. आधे घंटे से भी कम समय में वह पैदल ही दफ़्तर पहुंच जाया करता. उसी वक़्त यामिनी कॉलेज़ के लिए निकलती. कुछ दूर पैदल चलने के बाद ही रिक्शा नज़र आता जिस पर बैठकर वह कॉलेज़ चली जाती.

मलय की नज़र करीब-करीब रोज़ ही यामिनी पर पड़ती पर निस्पृह भाव से वह उसे अनदेखा करता दफ़्तर चला जाता. सलीकेदार व सुरुचिपूर्ण उसकी पोशाक को देख मलय के मन में प्रशंसात्मक भाव उठते. यामिनी की सलज्ज दृष्टि प्राय: नीचे ही रहती. रिक्शे पर चढ़ते वक़्त जब दुपट्टे के आंचल को सावधानी से पकड़ती तो लंबी चोटी लहराती-सी सामने आ जाती.

यामिनी की सहेली निशा जिस दिन साथ होती उस दिन दोनों गप्पें मारती हुई आतीं. बातों के दरम्यान उन्मुक्त भाव से उसका हंसना बेहद आकर्षक लगता था. उसके गौर वर्ण पर प्रत्येक रंग के कपड़े फबते.

मलय की रुचि दिनों-दिन यामिनी में बढ़ने लगी. दफ़्तर जाने की जल्दी में उसने जैसे ही शर्ट पहनी उस पर एक दाग़ नज़र आया. प्रेस वाले को मन ही मन कोसते हुए उसने छोटे भाई निलय को आवाज़ दी, 'निलय अपनी कोई शर्ट मेरे लिए निकाल दो, मुझे देर हो रही है.'

निलय ने आसमानी रंग की अपनी शर्ट मलय को लाकर दे दी. वह एम. ए. फ़ाइनल में था. यूनिवर्सिटी जाने की उसे भी जल्दी थी. दोनों भाइयों में अगाध स्नेह था. पिता के कड़े अनुशासन ने दोनों को सुंदर व्यक्तित्व प्रदान किया था. दोनों ही प्रतिभाशाली थे. मलय ने रोज़ की तरह सड़क पर नज़र डाली. सड़क की बायीं ओर यामिनी मंद गति से आगे की ओर बढ़ रही थी. अचानक उसने पीछे पलट कर देखा. उसकी नज़र मलय की शर्ट पर जा टिकी. उसके होठों पर सलज्ज मुस्कुराहट खिल गयी. उस रहस्यमयी मुस्कुराहट ने मलय को विचलित कर दिया. घबराकर उसने शर्ट पर बार-बार दृष्टि डाली कि कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं.

मलय इतना तो समझ ही चुका था कि यामिनी उसमें दिलचस्पी ले रही है. यामिनी उसके घर से कुछ ही दूर रहती थी. इस कारण वह उसके नाम से परिचित था. उसके रोबदार पिता को भी वह अच्छी तरह से जानता था. उस घबराहट में वह उसकी दिलकश मुस्कुराहट पर मुस्कुरा न सका.

यामिनी की प्रतीक्षा की पुलक उसे आज समय से पहले ही सड़क पर ले आयी. वह जानना चाहता था कि यामिनी उसमें इतनी दिलचस्पी क्यों दिखा रही है जबकि उसने इस विषय में सोचा तक नहीं? आख़िर वह कहना क्या चाहती है? यामिनी का दूर तक कहीं पता नहीं था. वह असमंजस में पड़ गया. अगर वह आगे बढ़ जाता है तो फिर उसे देख नहीं पायेगा. पीछे वापस लौटने की मूर्खता वह करना नहीं चाहता था. तभी रिक्शे से आती वह दिखी. उसने जेब से एक काग़ज़ का टुकड़ा निकाल कर अपने दफ़्तर का फ़ोन नंबर लिखा. जैसे ही रिक्शा पास से गुज़रा उसने धीरे से रिक्शे पर वह काग़ज़ का टुकड़ा डाल दिया. रिक्शे के आगे बढ़ जाने से वह देख नहीं सका कि उसने काग़ज़ उठाया या नहीं फिर भी आश्वस्त हो उठा.

परिचय

१५ जून, पटना.

बी. ए. ऑनर्स, एम. ए. द्वय (राजनीति शास्त्र, हिंदी). बी. एड.

: प्रकाशन :

वर्ष १९९७ में टिस्को हाईस्कूल जमशेदपुर से स्वैच्छिक-अवकाश ग्रहण कर स्वतंत्र लेखन; उच्च स्तरीय पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में ३०० के क़रीब कहानियां तथा ५० के क़रीब आलेख; दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, हिंदुस्तान, आज, उदितवाणी, इस्पात मेल (जमशेदपुर), सन्मार्ग (कलकत्ता), उत्तरकाल आसाम. आकाशवाणी जमशेदपुर से सन १९९३ से निरंतर कहानियां प्रसारित. आकाशवाणी पटना के कार्यक्रम बाल-मंडली की पूर्व बाल-कलाकार; 'आज का सच' व 'नई सुबह' (कथासंग्रह), कहानी 'आज का सच' के लिए निर्माता निर्देशक प्रवीण दोदेजा द्वारा डॉक्यूमेंट्री फ़िल्म (१० मिनट का) बनाने का सनू २००६ में प्रस्ताव.

: सदस्य :

अखिल भारतीय महिला रचनाकार संघ, इलाहाबाद; सिंहभूम ज़िला हिंदी साहित्य सम्मेलन; बहुभाषी साहित्यिक संस्था सहयोग; साहित्यिक संस्था अक्षर-कुंभ; बेनीपुरी साहित्य-परिषद, जमशेदपुर.

: सम्मान :

मानद उपाधि - 'राष्ट्रभाषा गौरव' सम्मान २०१४- अखिल भारतीय हिंदी सेवा संस्थान इलाहाबाद द्वारा.

स्वामी विवेकानंद जयंती की पूर्व संध्या पर स्थानीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित.

मानद उपाधि- 'साहित्य शिरोमणि' २०१५- अखिल भारतीय हिंदी सेवी संस्थान इलाहाबाद द्वारा.

दिन भर दफ़्तर में वह फ़ोन की प्रतीक्षा करता रहा पर फ़ोन नहीं आया. उसकी व्यग्रता बढ़ती जा रही थी. यामिनी की मुस्कुराहट का राज़ जानने को वह उत्सुक हो उठा. उससे तो परिचित नहीं है वह, फिर उसकी आंखों से पहचान की झलक क्यों मिलती है? मलय दिन भर उलझनों से घिरा रहा.

शाम की उदासी बढ़ती जा रही थी. दफ़्तर से मलय को निकलने में थोड़ी देर हो गयी. अंधेरे की परतें डूबने-उतराने लगीं जब वह अपने घर के समीप पहुंचा. सड़क के प्रकाश से दूर अंधेरे में उसे एक साया नज़र आया. उसके हृदय की धड़कनें बढ़ गयीं क्योंकि उसकी खिड़की से थोड़ी दूर यामिनी खड़ी अंदर की ओर देख रही थी. जब तक वह

उसके समीप पहुंचता वह त्वरा से आगे बढ़ गयी थी. रात के उस धुंधलेपन में उसका पीछा करना मलय के आचरण के विरुद्ध था.

मलय बेहद विकट स्थिति में फंस गया था. उसने कभी उस लड़की के विषय में कुछ सोचा तक नहीं था फिर यह गले क्यों पड़ रही है? इस बात से उसे इंकार नहीं कि उसके व्यक्तित्व में आकर्षण है जो किसी को भी सम्मोहित कर सकता है. रात के अंधेरे में वह खिड़की से किसे ढूंढ़ने का प्रयास कर रही थी? प्रश्नों के जाल में वह फंसता गया. घर वापस लौटा तो उसकी मां ने बताया कि गुरू पूर्णिमा के अवसर पर उसके पिता के साथ वह हरिद्वार जा रही थी.

निलय अपने अध्ययन में व्यस्त रहता था. इस कारण वह अपनी समस्या को उसके सामने नहीं रखना चाहता था.

रात करवटें बदलने में बीत गयी.

दफ़्तर में फ़ाइल देखने में मलय तल्लीन था कि तभी फ़ोन की घंटी बज उठी. फ़ोन पर किसी लड़की का स्वर सुन वह चौंक उठा.

'आप मेरा नाम तो जानते ही होंगे, मैं यामिनी बोल रही हूं.'

'बहुत दिनों से आपसे कुछ कहना चाह रही हूं पर...'

'हां... हां... बोलो ना.'

'आपसे सहायता चाहती हूं.'

'मुझसे...?' आश्चर्य से मलय ने पूछा.

'मैं निलय से प्यार करती हूं. वह भी मुझसे बेहद प्यार करते हैं पर हमारे विवाह में कुछ अड़चनें हैं जिसे दूर करने में आपकी सहायता चाहती हूं.' बहुत ही मासूमियत से यामिनी ने कहा.

मलय विद्रूपमय असहाय अवस्था में फंस गया. ऐसी विकट स्थिति की उसने कल्पना नहीं की थी. सोचा कुछ था और हो गया कुछ और. उसके सारे उत्साह पर पानी फिर गया था. फिर भी यामिनी के अनुरोध की अवमानना करना उसके वश की बात नहीं थी. परिस्थिति से विवश होकर उसने स्नेह भरे स्वर में पूछा,

'मैं तुम दोनों की क्या मदद कर सकता हूं?'

'मैं शाम को आपके घर आ रही हूं वहीं सभी मिलकर इस समस्या के विषय में बातें करेंगे.' यामिनी ने कहा.

मितभाषी मलय चिंतित हो उठा. यामिनी की साफ़गोई व बचकानी उक्ति पर वह उलझन में पड़ गया. निलय अपनी एम. ए. फ़ाइनल परीक्षा में व्यस्त है और यामिनी अभी बी. ए. में पढ़ रही है. ऐसे में प्यार के चक्कर में फंसकर दोनों ही अपना भविष्य नष्ट कर लेंगे. निलय ने कभी उसे इस बात की भनक भी लगने नहीं दी.

मलय को अब सारा माजरा समझ में आ गया. उसे देखकर यामिनी के मुस्कुराने का कारण भी समझ में आया. उसके हृदय का प्रेम-ज्वार दूध के उफान की तरह ही ख़त्म हो चुका था. यामिनी के चरित्र में वायु के झोंके-सी निर्मलता थी पर अभी उसमें परिपक्वता की कमी थी. मलय का हृदय उसके प्रति करुणा से भर उठा.

दोपहर की उनींदी घड़ी में दफ़्तर का वातावरण भी शांत हो गया था. मलय चिरंतन मौन के दायरे में सिमटा रहा. माता-पिता की अनुपस्थिति में एक अनजान लड़की का घर में आना उसे उचित नहीं महसूस हुआ. निलय से बातें करने की इच्छा हुई तो उसका मोबाइल स्विच ऑफ़ पाया.

वह यह सोच खीज उठा कि आसन्न संकट के समय प्राय: सबके मोबाइल ऑफ़ ही क्यों मिलते हैं? स्विच ऑफ़ ही रखना है तो मोबाइल ख़रीदते ही क्यों हैं?

कुछ देर फ़ाइल को बंद करके मेज़ पर पेपर वेट को वह घुमाता रहा.

शाम की फैलती छाया में सब कुछ मानों सिमट गया था. मलय चिंता के भंवर जाल में जकड़ता चला जा रहा था. घर पहुंचा तो बरामदे में ही निलय व्यग्रता से चहलक़दमी करता नज़र आया. उसे देख वह कमरे के अंदर चला गया.

'निलय' अंदर घुसते ही मलय ने आवाज़ दी.

'जी... भैया?' घबराहट में किसी तरह निलय के मुंह से निकला.

'यामिनी का फ़ोन आया था. वह अभी यहां आयेगी. यह सब चक्कर कब से चल रहा है? पापा क्या तुम्हें एक विजातीय को जीवन संगिनी बनाने की अनुमति देंगे?' एक ही सांस में मलय ने बहुत सारे प्रश्न कर डाले.

निलय परिस्थिति की गंभीरता को भांपकर शांत ही रहा. वह भी यामिनी को चाहने लगा था पर प्यार की डगर पर दोनों कुछ क़दम ही चले थे कि सिर पर मुसीबत आ गयी. यामिनी के पिता ने उसका विवाह कहीं और तय कर दिया. यामिनी चाहती थी कि निलय के साथ कहीं भागकर वह शादी कर ले. निलय इस तरह के विवाह के लिए तैयार नहीं था. उसने अपना अध्ययन भी पूरा नहीं किया था.

निलय ने सब कुछ मलय को कह सुनाया. वह अपने प्यार को भावुकता में बहकर नष्ट नहीं करना चाहता था. उसने सोचा था कि अध्ययन की समाप्ति के बाद ही यामिनी के पिता उसके ब्याह की बात सोचेंगे. दोनों भाई समस्या को सुलझाने की सोच रहे थे कि तभी यामिनी आ गयी.

यामिनी का संकोच निवारण करने के लिए मलय ने औपचारिक बातें शुरू कर दीं. लाज की अनोखी लाली यामिनी के चेहरे पर थी पर आंखें बुझी-बुझी सी लग रही थीं. मलय पानी लाने के बहाने थोड़ी देर के लिए खिसक गया.

'कुछ सोचा तुमने?' तरल दृष्टि उठाकर यामिनी ने पूछा.

'क्या सोचूं...? तुम्हारे पिताजी को इतनी जल्दी है?' निलय अप्रस्तुत हो उठा.

'मैं तुम्हारे बिना रह नहीं पाऊंगी.' निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए यामिनी ने कहा.

'मैं भी नहीं... पर क्या करूं? तुम परिस्थिति को समझने की चेष्टा करो' यामिनी अपने दुर्भाग्य की विवशता पर सिसक पड़ी. मितभाषी निलय ने उसके कंधे पर सांत्वना भरा स्पर्श दिया. यामिनी ने अवसाद में डूबी अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को मात्र एक पल उठाया. उसकी बोझिल पलकें कुछ देर झुकी रहीं. मंत्रबिद्ध-सी स्थिति दोनों की हो गयी थी. निलय के आत्मीय स्पर्श से उसकी सिसकियां फूट पड़ीं और निलय के कंधे पर उसने अपना सर टिका दिया. चिर सानिध्य की इच्छा को दोनों ने उसी क्षण परिस्थिति से विवश होकर अपने मन के कोने में हमेशा के लिए दफ़ना दिया.

मलय पानी लेकर जब तक आया दोनों प्रकृतिस्थ हो चुके थे. पूरे वातावरण में उदासी छा गयी थी. दोनों के बीच एक मौन पसर आया था. थके-हारे दोनों शायद अपने सपनों के महल के धराशायी हो जाने पर मलबों के ढेर में बीते दिनों के सुखद पलों को तलाश रहे थे. मलय को आते देख यामिनी ने धीरे से निलय के हाथों की पकड़ से अपने हाथों को मुक्त कर पीछे कर लिया. अपनी आंखों पर झिलमिलाते उन अश्रुकणों को उसने अपनी हथेली से पोंछ लिया.

निलय खिड़की के पास जा खड़ा हुआ. मलय जानता था कि वह खिड़की से बाहर कुछ देख नहीं रहा है बल्कि अपने ग़मगीन चेहरे को मलय से छिपाने के लिए ही वह बहाने तलाश रहा है. मलय ने यामिनी के कंधे पर स्नेह-स्पर्श दिया.

'यामिनी, तुम दोनों की पीड़ा मैं समझ रहा हूं. तुम विवाह टालने के लिए अपने पिताजी को समझा नहीं सकतीं और निलय ने अपना अध्ययन पूरा नहीं किया है. कोरी भावुकता से कुछ हासिल होने वाला नहीं. इस रिश्ते को एक नया मोड़ देकर आगे बढ़ जाने में ही हम सबकी भलाई है. तुम्हारे पिताजी का निर्णय तुम्हारे लिए अच्छा ही होगा.' यामिनी चुपचाप सब कुछ सुनती रही तो मलय ने फिर कहा, 'परिस्थिति इंसान को जीना सिखा देती है. वक़्त अपने मरहम लगाकर तुम्हारी पीड़ा दूर कर देगा. तुम्हारा सुखद भविष्य सामने है.'

यामिनी ने प्रतिवाद नहीं किया. उसने कुछ ही पलों में मलय को भी स्नेह से बांध दिया, एक अपनत्व-सा मलय भी महसूस करने लगा. मलय को उन दोनों से बेहद सहानुभूति हो गयी पर वह उनकी सहायता न कर सका. अपनी विवशता पर वह मन ही मन झुंझला उठा.

यामिनी ने जाने के समय मलय के चरण-स्पर्श जब किये तो मलय के हृदय में ममत्व जाग उठा. उसने यामिनी के सर पर हाथ रखकर मन ही मन आशीर्वादों की झड़ी लगा दी. निलय ख़ामोश एक किनारे खड़ा था.

विदाई के समय यामिनी ने पास आकर उसकी आंखों में झांका. पल भर दोनों निर्निमेष एक दूसरे को देखते रहे और फिर वह सधे क़दमों से दरवाज़े से बाहर चली गयी.

ओझल हुआ अतीत मलय को व्यथित करने लगा. उसकी पीड़ा स्वत: धीरे-धीरे कम होने लगी. जब उसने यामिनी को अपने पति और बच्चों के साथ ख़ुश पाया. उसकी इच्छा हुई कि वह यामिनी के सामने चला जाये. उसे देखकर यामिनी बेहद ख़ुश हो जायेगी. तभी अंतर्मन ने उसे सतर्क किया.

उसकी एक छोटी-सी भूल से यामिनी के जीवन में भूचाल आ सकता है. वह अतीत को भूलकर वर्तमान से सामंजस्य स्थापित कर चुकी है.

कॉफी पीकर वह चुपचाप 'बरिश्ता' से निकल आया कुछ देर मैकडोनाल्ड के सामने खड़ा वह बच्चों को देखता रहा. तभी मोबाइल ने उसका ध्यान आकृष्ट किया.

'भैया, हम सभी वैष्णो देवी के दर्शन से लौट रहे हैं. निशा की इच्छा दिल्ली में कुछ दिन रहने की है. चिंटु-मिंटु भी आपसे मिलने को परेशान हैं. रिंकी को भी बता देना.' निलय ने उत्साहित होते हुए बतलाया. मलय बहुत ही ख़ुश

लघुकथा

नचिकेता प्रश्न

सुरेश कुशवाहा 'तन्मय'

चुनावी मौसम में गली मुहल्लों में बजते प्रचार भोंपू और दरवाज़े पर हाथ जोड़ते टोलियों में आते लोग.

स्वाभाविक ही रामदीन की नौ वर्षीय पुत्री ने उससे पूछ लिया – पिताजी आजकल ये सब क्या हो रहा है, और पहली बार दिखने वाले ये सब लोग कौन हैं?

रामदीन ने बताया, बेटी – देश में नयी सरकार बनाने के लिए चुनाव हो रहे हैं और ये लोग सरकार बनने के लिए हमसे वोट मांगने आ रहे हैं.

तो पिताजी, फिर आप भी सरकार बनने के लिए वोट क्यों नहीं मांग रहे हैं?

बेटी, ये सब भरे पेट वाले साधन और शक्ति संपन्न लोगों का काम है, साथ ही जो अपने परिवार, मोहल्ले, गांव, शहर, प्रदेश व देश आदि की चिंताओं से मुक्त हों रात-दिन एकाग्र भाव से केवल कुर्सी का चिंतन करते हैं, वे ही अ-संसारी लोग इन चुनावों में भाग लेते हैं.

अच्छा पापाजी, ये चुनाव जीतकर फिर कहां जाते हैं और वहां क्या करते हैं ?

प्रश्न बहुत कठिन था किंतु रामदीन ने संक्षेप में सीधा-सा जवाब देते हुए कहा कि, बेटी – फिर ये लोग पांच वर्षों के लिए दिल्ली जिसे पहले शायद इंद्रप्रस्थ भी कहा जाता रहा है, वहां जा कर ये लोग अपनी कुर्सियों पर आसीन हो वातानुकूलित वातावरण में पृथ्वी के समस्त प्रकार के सुख भोगते हुए देश की दुर्दशा पर एक दूसरे को दोषी ठहराते वैभव लक्ष्मी के अनुरागी बन नाना प्रकार के कर्मकांड करते रहते हैं.

अच्छा पापाजी एक अंतिम प्रश्न – क्या चुनाव जीत कर सरकार में नेता या मंत्री बनने के बाद ये लोग फिर से पहले जैसे आदमी बन पाते हैं या नहीं?

प्रश्न सुनकर रामदीन असमंजस में पड़ गया. क्योंकि सदियों पूर्व कुछ ऐसा ही जटिल प्रश्न धर्मराज से नचिकेता ने पूछा था और बेचारे धर्मराज जैसे समर्थ भी उस प्रश्न से विचलित हो गये थे तो फिर रामदीन की क्या बिसात!

फिर भी उसने बेटी को समझाते हुए कहा कि – बेटी आज के समय में जब हर एक आदमी, आदमी से इतर कुछ और बनने की भाग दौड़ में बेतहाशा भाग रहा है तो ऐसे में तुम्हारे इस प्रश्न का कोई उपयुक्त जवाब मुझे इस समय तो नहीं सूझ रहा है.

एक मोहक मुस्कान के साथ वह नन्हीं बच्ची अपने पिता के चेहरे की ओर देखते हुए मौन हो गयी.

२२६, मां नर्मदे नगर, बिलहरी,
जबलपुर-४८२०२० (म. प्र.).
मो. : ९८९३२६६०१४

हो गया. उसने मेघा से तुरंत मोबाइल पर बात की और शीघ्र घर वापस लौटने को कहा.

वर्षों बाद यामिनी को देखकर मलय के मन में हलचल-सी मच गयी थी. यामिनी का स्नेह-प्रवण चेहरा उसे बार-बार याद आने लगा. निलय और यामिनी के बिछुड़ने की बेला याद करके वह संवेदनशील हो उठा. संस्कारशील यामिनी ने उसकी बात को मानकर बहुत बड़ी समस्या का निवारण कर दिया था. उसने यामिनी को समझाने की कोशिश की थी, 'शादी-ब्याह जैसे नाजुक रिश्ते माता-पिता की मर्ज़ी पर छोड़ दो. वे अपनी संतान का सदा भला सोचेंगे. शादी-ब्याह से दो परिवारों का रिश्ता जुड़ता है. अनुभवी माता-पिता हर तरह की छानबीन करके ही अपनी बेटी का हाथ किसी योग्य पात्र के हाथ में देते हैं. माता-पिता के आशीर्वाद से ही किसी कार्य की सिद्धि होती है.' वक़्त हर ज़ख़्म पर मरहम पट्टी कर देता है.' यामिनी का आंखों से अश्रुधार बहते रहे पर उसने कुछ कहा नहीं.

मलय को यह सोचकर बेहद प्रसन्नता हो रही थी कि आज दोनों अपने-अपने परिवारों के साथ ख़ुश हैं. अब उसे घर पहुंचने की जल्दी थी ताकि निलय के स्वागत की तैयारी कर सके.

दोनों भाइयों के बच्चों की किलकारियों से घर गूंज उठेगा. असीम परितृप्ति के भाव उसके चेहरे पर आ गये.

द्वारा अनुप्रीता लाल
के.३८-ए, प्रथम तल,
कालका जी, नयी दिल्ली-११००१९
मो.: ९३३४८२६८५८/९९५५९९७६५६

कविता

औरत

सदाशिव कौतुक

वह औरत सूरज को दिखाती है
देख...
तू ही गोल नहीं है
मेरे हाथों में भी गोल तगारी है
जिससे खेलती हूं खिलौने की तरह,
कभी गोद में लेती हूं
कभी कमर पर रखती हूं
कभी कंधे पर / और
सिर पर बैठा लेती हूं.

वह औरत
सूरज की धूप में ही नहीं तपती
एक और सूरज के सामने
तपती है शाम को
और बुझाती है
बच्चों के पेट की आग.

वह औरत
कपड़े का झूला बनाकर
सुलाती है बच्चे को
गाती है मधुर लोरी
उस झूले के सामने
बादशाहों का रत्न जड़ित झूला भी
पानी भरता है.

वह औरत
दुःख को दुःख समझती ही नहीं
खेल समझती है,
खेल-खेल में दुख को
उठाना चाहती है गेंद की तरह
और दुख उससे डर कर
निकल जाता है दहलीज से बाहर.

श्रमफल, १५२०, सुदामा नगर,
इंदौर–४५२०१६ मो. ९१७९७५९५६१,
९८९३०३४१४९
*ईमेल- **Sadashiv@kavikautuk.com***

ग़ज़ल

राजेंद्र तिवारी

एक चेहरा सामने से... यूं गुज़रता है ।
आईना जिसके लिए बनता-संवरता है ।

शाम का चेहरा दमक उठता है रंगों से,
जब सितारा उसकी पलकों पर उतरता है ।

कोई दीवाना है जो अक्सर अकेले में,
चांद से हंस-हंस के पहरों बात करता है ।

जो मेरी रग-रग में रहता है हरारत सा,
बन के ख़ुश्बू वो ही ग़ज़लों में बिखरता है ।

एक ही रिश्ता बचा है बस मुहब्बत का,
और दुनिया को वही रिश्ता अखरता है ।

आपकी बाहों में रुक जाये तो रुक जाये,
वक़्त वर्ना किसकी ख़ातिर कब ठहरता है ।

इक हक़ीक़त रोज़ मुझमें सर उठाती है,
एक सपना है जो मुझमें रोज़ मरता है ।

‘तपोवन’, ३८-बी, गोविंद नगर,
कानपुर–२०८००६
मो. : ९३६९८१०४११

कहानी

निषिद्ध पथ के राही

पूनम मनु

पूरे मन से अपने सारे साज-श्रृंगार करने के बाद आइने के सामने खड़े हो, एक निग़ाह उसने अपनी चूड़ियों, बिछियों और मांग में भरे सिंदूर पर डाली. वह स्वयं पर ही मोहित हो उठी. काजल लगी अपनी बादामी आंखों के जादू को बार-बार पलक झपका कर अनुभूत करती हुई वह हौले-हौले मुस्कुराती रही थी. जाने कितनी देर तक. शादी की चुनरी ओढ़ते ही उसकी मुस्कान कुछ और गहरी हो उठी. शादी के चौदह साल बाद भी वह बिलकुल नयी-नवेली दुल्हन-सी लग रही थी.

पति मनीष यूं ही नहीं उससे इतना प्यार करते. कुछ तो था उसमें कि शादी के इतने दिनों बाद भी वे उसी पर रीझे रहते थे.

-'अरी! आजा भी अब... बहोत देर हो गयी. सारी लुगाई हमारी राह देखती होंगी. तेरा तो साज-श्रृंगार ही न ख़त्म होवे है. करती ना तो करती ना है ... और जद करे तो इत्ती देर लगा देवे है कि बस पूछो ही मत.' सासु मां बाहर आंगन में तैयार होकर, जाने कब से उसका इंतज़ार करते हुए, बड़बड़ाए जा रही थीं.

'आयी मां जी ... ' उनकी खीज बोरियत में बदलती, वे उसे दो-चार गालियां और सुना देतीं उससे पहले ही उसने अपनी पूजा की थाली व जल का लोटा लिया और कमरे से बाहर आ गयी.

वे पूरी प्रकृति को मदहोश करने वाले दिन थे. हिंदू त्योहारों का मौसम शुरू हो चुका था. यानि दीवाली आने वाली थी. इस साल की भरी घमस से लोगों को मुक्ति मिल चुकी थी. इन्हीं त्योहारों के बीच एक और त्योहार आता है करवाचौथ. जो सुहागिनों का त्योहार माना जाता है.

पूरे साल चाहे वह बिंदी भी न लगाये. पर करवाचौथ की तैयारी/ख़रीदारी वह अपने पति की हैसियत अनुसार जमकर करती और उसी तरह इस दिन अपना श्रृंगार भी वह बड़े मनोयोग से करती थी.

पूरे साल को जैसे इसी एक दिन में तौल लेना चाहती हो कि ज़िंदगी के कुछ बीते-रीते दिनों की बेला, सर्दियों की धूप की मानिंद जो दरवाज़े से सीढ़ियों तक, सीढ़ियों से छत की मुंडेर के आख़िरी कोने पर भी छूने से परे बस दिखती हुई, धरती और आसमान के मध्य की रेखा में विलीन होते-होते, संसार को काले कोहरे में लपेट सारी आभा अपने साथ ले जाती है.

वह जानना चाहती कि बेवफ़ा प्रेमी-सी, पीछा छुड़ाने को सीरत बदलती सी उम्र, वक़्त के बहते दरिया से बनी लकीरों को, कितना गहरा और गहरा करती जा रही है. क्या छूट रहा, क्या बाक़ी है. और बचे को कितना बचा सकते हैं, इसका पूरा ध्यान भी रखना चाहती वह.

किंतु, विपरीत इसके, दिनोंदिन बढ़ते उसके अपने सौंदर्य पर वह ख़ुद ही निहाल हो जाती रही अब तक.

हां... उस बार की बात कुछ अलग थी. उस बार वह किसी को जलाना व जताना चाहती थी कि वह उससे ज़्यादा ख़ूबसूरत है. इसीलिए सासु मां की डांट की भी परवाह न करते हुए ख़ूब अच्छे-से तैयार हुई थी वह.

... उसे सब स्मरण हो आया... वह भी जो स्मृति में बाक़ी न रहा था... वह भी जो अमिट रहा —अपनी सज-

धज और सौंदर्य पर इतराती हुई, सासु मां के साथ जब वह पूजास्थल पर पहुंची तो यह देखकर दंग रह गयी थी कि जिसको जलाने की ख़ातिर, उसने अपने बनाव-शृंगार पर आज आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया था. वह तो बहुत ही सादा-सा शृंगार किये, बिना बनावट के, सामान्य से कपड़ों में, पूजा की थाली लिए बैठी हुई है.

कहने को, यूं तो नयी चूड़ियां, नये बिछियों के अलावा कपड़े भी नये पहने थे उसने. किंतु बिना चटक-मटक.

बजाय ख़ुश होने के वह उसे देख, ठगी-सी रह गयी. अपना बनाव-शृंगार उसे बेकार लगने लगा था. ध्यान से देखने पर लगा कि उसका उज्ज्वल रूप-लावण्य कुछ मलिन-सा है आज. कोई ख़ास जान-पहचान तो न थी उसकी उससे परंतु पत्नियों के इस त्योहार पर उसको यूं उदास-सा देख, किंचित तरल भाव उभर आया था उसके प्रति उसके हृदय में. उसके साथ ही वहां पर मौजूद हर सुहागन भी उसे सज-धज की इस उम्र में इतना सादा देख हैरान थी.

सभी ने उससे इसका कारण जानना चाहा तो वह हंसकर, इतना भर बोली थी — 'अम्मा, मैं तो सदा से ही सिंपल रहती हूं. ज़्यादा बनाव-शृंगार मुझे पसंद नहीं.'

उसकी इस बात को सभी ने मन से स्वीकार कर लिया. पर, अब तक उसके लिए हमदर्दी का पात्र बनी वह औरत यकायक उसकी कुढ़न का सबब बन गयी थी.

'...तो क्या यह औरत मुझे ताने मार रही है.' उसके प्रति निषिद्ध भाव का उभर आना एक सहज प्रक्रिया थी.

मन में आये इस ख़्याल के परीक्षण को उसने सभी औरतों की तरफ़ ध्यान से देखा तो पाया कि सभी औरतें ख़ूब सजी-धजी खड़ी थीं. एक अकेली वही नहीं सजी-धजी थी.

वैसे भी वह अभी इस कॉलोनी की बहुओं में गिनी जाती है और 'बहुओं को तो सज-धज के ही रहना चाहिए' का ताना सभी बुज़ुर्ग स्त्रियां उसे सिंपल देख मारती रहती थीं. इसलिए उसने स्वयं के प्रति उमड़े शर्मिंदा करने वाले इस विचार को बड़ी सहजता के साथ अपने मन से निकाल दिया.

कैसे, उसकी ओर बुरा-सा मुंह बना, पूजा अर्चना के लिए वह भी उसके ही सामने वाली कतार में बैठ गयी थी तब... पूजा में मन कब लग रहा था उसका. वह तो कनखियों से बस उसे ही देखे जा रही थी. जाने क्या ताड़ लेना चाहती थी वह.

परिचय

स्नातक (एम. ए. की पढ़ाई जारी);
गृहणी होने के साथ-साथ पति को उनके व्यवसाय में अपना सहयोग देना.

: लेखन :

'वागर्थ', 'हिंदी चेतना', 'उत्पल', 'वसुधा', 'विश्वगाथा', 'समाज कल्याण पत्रिका', 'लमही' समेत बहुत सारे पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. ग़रीबों की सेवा, समाज कल्याण में सहयोग देना आदि.

'यह औरत कितनी सुंदर है. इसे बनाव-शृंगार की ज़रूरत भी क्या है.' मन से महसूस किया था उसने.

उधर वो औरत बिन्नी, उससे बेपरवाह अपनी पूजा-अर्चना में लगी रही. तब बड़ी खीज हुई थी उसे. उसके इस प्रयास को कि बात कम-से-कम एक दूसरे को देख, मुस्कान तक तो पहुंचे को, पूरी तरह निष्फल कर दिया था उसने. 'घमंडी कहीं की' उसकी ओर से पूर्णतया तटस्थ रही उस औरत पर लानत भेज अगले ही पल वह भी अपनी आराधना में लीन हो गयी थी.

यह कोई तीन साल पहले की बात थी. जब बिन्नी की उनकी कॉलोनी में पहली करवाचौथ थी.

ऐसे ही उसके लिए उसके अंदर का बेगानापन छितरता रहा उस दिन के बाद भी.

बावजूद इसके यदाकदा उसका सामना जब भी उससे होता, अपनत्व भरी एक मुस्कान वह उसकी ओर ज़रूर डालती पर प्रत्युत्तर में वह उसे सदा तटस्थ ही पाती रही. उसकी उसके प्रति उदासीनता अब उसमें चिढ़ पैदा करने लगी थी. कॉलोनी की सारी औरतों से बात करती पर उससे जाने क्यों इतनी दूरी बरतती कि — गमलों में उसके द्वारा की गयी बागवानी को देख कभी वह उसकी दिल खोल तारीफ़ भी करना चाहती तो वह सारा वार्तालाप एक-दो शब्दों में निबटा, उसे दीवार के इस तरफ़ से उस तरफ़ निहारते फूल-पौधों के सन्मुख, अकेला छोड़, अंदर जा, अपने काम में मसरूफ़ हो जाती, उसके प्रति नितांत रूखापन लिये. फिर भी जाने क्या रहस्य था उसके रूप में कि उसके द्वारा की गयी अपनी इतनी मूक अवहेलनाओं के बाद भी वह उसे जी भर देखने का लोभ संवरण न कर पाती थी. छत से छत मिली होने के कारण वह कई बार चोरी-चोरी अक्सर

उसके कमरे-आंगन आदि से उसके रहन-सहन व सुघड़ता को ताड़ने की कोशिश में लगी ही रहती थी. इतनी डाह होने पर भी जाने कैसा-सा आकर्षण था कि वह उससे बंध उसकी अपने घर में अनुपस्थिति में भी उसके बंद पड़े घर को घंटों निहारा करती.

उसे याद है — जिस दिन वह स्त्री अपने पति और तीन बच्चों के साथ उसके पड़ोसी के ऊपरी तल पर बने मकान में किराए पर रहने आयी थी, उसी दिन से उसके रूप से भय लगने लगा था उसे. मनीष यानी अपने पति को लेकर वह थोड़ा आशंकित रहने लगी थी. हालांकि मनीष पत्नीव्रता पति थे और आजतक उन्होंने कभी शिकायत का कोई मौक़ा तक न दिया था. फिर भी उसके सौंदर्य से आतंकित-सी वह छत पर जाते मनीष की हर हरकत को नोटिस करने लगी थी. ढकी...छुपी चौकसी के साथ.

परंतु... जल्द ही मनीष की ओर से उसे राहत महसूस हुई. मनीष उससे अनचित रहे. उधर उस स्त्री को भी उनसे कोई लेना–देना नहीं था. बात संतुष्टि व सुकून देने वाली थी. बेवजह का भय जाता रहा था.

☐

लंबा कद, उजला रंग, काली-काली, बड़ी-बड़ी आंखें, उन पर घनी काली पलकें, काले स्याह केशों में दमकता सुनहरा मुखड़ा, प्राकृतिक गुलाबी छटा के साथ लाली लिये कपोल हर किसी स्त्री के मन में उसके लिए डाह पैदा करने को काफ़ी थे.

वह सोचती काश! यह स्त्री उसकी सखी होती... उसकी प्यारी वाली दोस्त. पर, सभी चाहे-अनचाहे उसके प्रयासों के बाद भी उससे उसकी दोस्ती न हो सकी.

यहां तक कि-उनकी कॉलोनी से आधे किलोमीटर की दूरी पर लिये अपने मकान के गृहप्रवेश में उसने सभी को स्वयं निमंत्रण देकर बुलाया था. सिवाय उसके. उसका बुलावा उसने उसकी ही सासु मां के हाथों भिजवाया था. मानो कि उसकी नज़रों में उसकी कोई हैसियत ही न थी.

तब इस तरह के बुलावे पर वह बुरी तरह कुढ़ उठी थी. — 'मैं न जाऊंगी इस औरत के गृहप्रवेश में ... भाड़ में जाये.' क्रोध से भर फुंफकार उठी थी वह.

— 'हम्म ठीक है, दिल पर मत लो, न जाना चाहती हो, तो मत जाना.' मनीष को उस औरत के प्रति उसकी बड़बड़ाहट की वास्तविकता ज्ञात थी.

....और वह नहीं गयी थी, उसे याद है.

समय गुज़रता रहा... उम्र की रफ़्तार को पंख लगे थे. अपनी-अपनी ज़िंदगी में सब मसरूफ़ थे. गोकि ज़िंदगी ऊन का उलझा गोला थी. जिससे जितना सुलझती जाती वह उतना ही समय का सुंदर स्वेटर बुनता जाता. जिससे न सुलझती वह उलझा रहता उसमें... मसरूफ़ रहता. बाद इसके भी, वह उसके पास आने-जाने वालों से उसका कुशलक्षेम लेना नहीं भूलती. वह उसे याद भी नहीं करती होगी यह जानने के बाद भी।

किंतु...

समय निर्बाध गति से दौड़ता हुआ थम-सा गया उस पल, जब एक सुबह वह, प्यासे पशु-पक्षियों की ख़ातिर घर के सामने रखे, मिट्टी के पात्र में पानी भरने को, पानी से भरी बाल्टी लिये, बाहर आयी. इससे पहले कि वह पानी पलटती-

'ऐ साधना...!' ये बिन्नी की पूर्व मकान-मालकिन व उसकी पड़ोसन की आवाज़ थी.

'हां...' वह अचानक ही यूं पुकारे जाने पर घबरा उठी.

-'साधना... तुझे पता है...? गज़ब हो गया!'

-'क्या...'

-'बिन्नी... बिन्नी ने आज सुबह अत्महत्या कर ली... रेल के नीचे कट के.'

'हें...!!!'

'हां...'

'ओह....!'

आवाज़ की लरज और मार्मिकता की अधिकता ने महकती सुबह को किसी असहनीय दुर्गंध से भर दिया था. यूं लग रहा था जैसे भीगे आसमान से दिसंबर के पहले सप्ताह के अंतिम दिन की सुबह में शबनम की जगह बिन्नी के मांस के लोथड़े गिर रहे हों. उसके हाथ से पानी की भरी बाल्टी छूट गयी. पैरों के नीचे बिखरा पानी लगा जैसे यह बिन्नी का लहू है और सारी दुनिया बस उसमें डूबने को है. वह फटी-फटी आंखों से पैरों के नीचे बिखरे पानी को जड़-सी खड़ी देखती रही.

पड़ोसन के हिलाने पर उसे वास्तविकता का भान हुआ. अचेत होने से बचती, सचेतन का आभास करती हुई मामले की 'स्पष्टता' को और अधिक स्पष्ट समझने की ख़ातिर अपने हलक में अभी-अभी सूखे तंतुओं को थूक से

तर कर वह पूछ उठी, 'कौ...कौन बिन्नी...?'

— 'अरे! वही, निलय की मम्मी...' संदेह जाता रहा. एक आस भी न बची. कलेजा धक-धक-धड़ाक...

आह !

वह नहीं सोच पायी कि यह जानकारी देने वाली स्त्री खड़ी है कि चली गयी. वह तो भारी पांव और मन लिये अंदर आकर पलंग के एक कोने पर बैठ गयी चुप...!

शून्य में ताकती रही बहुत देर तक. रूह तक बेचैन हो उठी उसकी. अभी ४-५ माह पहले ही तो दिल दहलाने वाली ख़बर सुनी थी उसने. ख़बर थी कि, उसके पति रमेश ने कोई 'दूसरी औरत' कर रखी है. वह उससे तनिक भी प्रेम नहीं करता है. रात-दिन की मारपीट, लड़ाई-झगड़े. उस दिन कुछ-कुछ समझ आयी थी, उससे उसकी बेरुख़ी उसे.

वह ज़रूर लख गयी होगी... उसे ज़रूर महसूस हो गया होगा कि उसकी गहरी निग़ाहें अवश्य उसके दर्द को पढ़ लेंगी. वे ज़रूर पढ़ लेंगी उसकी ज़िंदगी की वीरानी को. वैवाहिक जीवन के मदमाते, उत्ताल तरंगों से भरे रंगीन दिनों में उसके हद से ज़्यादा सिंपल रहने का राज़ जान जायेगी वह. उसे अवश्य कुछ दिखायी दिया होगा कि ये पढ़ी-लिखी आंखें चालाक बेशक़ न हों पर दूसरों के दर्द उनकी सांसों के उतार-चढ़ाव से भी भांप जाती हैं.

उसे यह मुगालता ज़रूर रहा होगा कि वक़्त का वैद्य अवश्य इससे अपने अनुभव साझा करता होगा. वरना कैसे उसे सबके चेहरे देखने भर से उनके दिल के हाल पता चल जाते हैं. कुछ तो वह सोचती रही होगी. वरना क्या ख़ास वजह रही कि उसकी कई चाही-अनचाही कोशिशों के बावजूद भी उसने उससे सदैव एक निश्चित दूरी बनाये रखी. दूरी... कि उसको उसकी तकलीफ़ पता न चले...

यह भी हो सकता है वह उसे इस योग्य ही न समझती हो कि उससे दोस्ती की जाये. या यह भी कि उसकी खुशहाल ज़िंदगी से वह अंदर ही अंदर ईर्ष्या रखती हो.

अंतिम दोनों बातों को मन मानने को कदापि तैयार न था. मन में कई प्रकार की उथल-पुथल के बाद भी उसकी ज़िंदगी में इस दर्द का होना उसके प्रति उसे कारुण्य से भर गया था. हल्के क्रोध का जो भाव उसके प्रति उसके मन में था वह अब उसके पति रमेश के लिए बेपनाह नफ़रत में तब्दील हो गया था. जो अब तक यथावत बना रहा.

—'इतनी सुघड़ और सुंदर पत्नी की इसे ज़रा भी क़द्र नहीं...' एक बार तो, उसके मुख से बार-बार उसकी तकलीफ़ सुन, मनीष भी कह ही बैठे थे.

ओह! तो... यह असल बात रही उसकी उदास आंखों और सुनहरे चेहरे पर पसरी मलिनता की.

'दूसरी औरत' की बात जबसे उसने सुनी थी तभी से उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखों की उदासियां उसे समय-समय पर मौसम में घुली दिखायी देती थीं.

'नाशपीटा कहीं का, शक्ल का न सूरत का... इतनी सुंदर-सुघड़ बीवी की क़द्र न कर सका.' जैसे वह बैरागी हुई जाती थी.

-'तू क्यूं हिन हुई जाती है खामखां... मरने दे परे को.' हर बात में उसके ज़िक्र पर सास ने टोका उसे कई बार.

उनका मानना था कि सबका अपना-अपना जीवन है. सबके अपने-अपने सुख-दुख जो स्वयं ही भोगने-जीने होते हैं. इसीलिए ज़्यादा अफ़सोस करने से कुछ नहीं होगा. सिवाय अपना वक़्त बर्बाद करने के. उनके इस कथ्य में अपना कुछ-कुछ समर्थन देने के बाद भी वह इस बात पर अफ़सोस करने से बाज न आती थी.

पर आज.... बिन्नी चली गयी थी. सारे अफ़सोस धरे रह गये थे. उसे किसी की भी अब सांत्वना की ज़रूरत न थी. सारे लोकाचार, सुंदरता, सुघड़ता के परे. बिना किसी को कुछ बताये. क्या कुछ बोया होगा उसने आज. क्या कुछ काटा होगा. यह तो वही जानती थी. आह...!

साधना को सुबह-सुबह अपने आंसू पोंछते देख, स्नानघर से वापस लौटे मनीष, किसी अनजानी आशंका से भर उठे.

— 'क क्या हुआ...?'

— 'मनीष.... बिन्नी ने आत्महत्या कर ली...' आवाज़ में दर्द था.

-'कौन बिन्नी...?' मनीष का दिमाग़ जैसे बिलकुल खाली था. माथे की सिलवटें गहरी हो गयीं.

—'मलय की मां ने...!'

'ओहह!....'

कई पल को निशब्दता-सी रही दोनों के मध्य.

— 'बुरा हुआ...!' मनीष ने एक लंबी सांस छोड़ते हुए अफ़सोस जाहिर किया.

वह तो वह भी न कर सकी. बुत-सी बनी बैठी रही.

आधे घंटे की उसकी ख़ामोशी पर आख़िर मनीष को

पहल करनी पड़ी.

— 'है तो, बहुत ही दुख की बात... पर तुम इसे दिल पर मत लो... खड़ी हो जाओ... उठो! मेरे लिए नाश्ता-पानी तैयार कर दो. आज मुझे ज़ल्दी निकलना है. तुम्हें मैंने कल ही बता दिया था कि मेरा जाना बहुत ही ज़रूरी है. अब तुम इस तरह से गम में बैठी रहोगी तो भला कैसे जा पाऊंगा मैं... उठो! वैसे भी मुझे देर हो गयी है. आता ही होगा विनय गाड़ी लेकर...'

मनीष को जाना ज़रूरी है इस बात से अंजान न थी वह. सारे दिन का सफ़र है वो भी ऐसी जगह पर जहां खाने का सामान तो क्या तकलीफ़ परेशानी में कोई गोली, दवाई भी दर्द की न मिले. न चाहते उसे उठना ही पड़ा.

— 'ज़्यादा टेंशन मत लेना, ना ही कोई मातम मनाना... दोनों बच्चों का ख़्याल तुम्हें ही रखना है. परसों तक लौट आऊंगा मैं... ठीक है!! बड़ा भरोसा करके जा रहा हूं तुम पर. अपनी सेहत ख़राब मत होने देना वरना बच्चे बहुत परेशान हो जायेंगे. मम्मी-पापा भी नहीं हैं घर में...' मनीष अपने तरीक़े से उसे समझाते हुए अपने गंतव्य की ओर निकल गये. वे जानते थे, साधना हर दुख पकड़ कर बैठ जाती है.

मनीष के घर से निकलते ही उसका मन और भी उदास हो गया. पर आज उसे ही सब कुछ समेटना, रखना था. उसने हिम्मत बांधी और जुट गयी काम में.

तीन दिन बाद... मनीष लौट आये. ये तीन दिन उसने कैसे काटे बस वही जानती है. एक तो बिन्नी का दुख और ऊपर से मनीष बग़ैर उसके तीन दिन... उफ़्फ़!

मनीष के आते ही अब तक सहेजा अपना सारा हौसला खो बैठी वह. मानों, मातम मनाना लाजिमी था उसके लिए. कुछ था उसके भीतर जो उसे तोड़े दे रहा था. चार दिनों से वह बुखार में थी. मनीष समझ गये मामला गंभीर है. एक तो नया-नया कारोबार उस पर रात-दिन पत्नी बच्चों की देखभाल.... रीमा को अपनी व्यथा फ़ोन पर बता बैठे मनीष.

रीमा, साधना की सगी मौसी की बेटी. उसकी हमउम्र बहन. उसकी सखी. आपस में दोनों का ख़ूब स्नेह है मनीष को पता था. इससे बेहतर उपाय मनीष को इन हालात में शायद सुझायी न दिया हो.

घर पहुंचते ही सब संभाल लिया रीमा ने. मनीष को राहत हुई. उसे भी...

-'ले! साधना, तेरी पसंद का खाना बनाया है मैंने... खा...!' रीमा को उसके यहां आये आज दूसरा दिन था.

— 'न... मेरा खाने को मन नहीं है...' रीमा के बहुत हिलाने-डुलाने पर साधना ने मरी-सी आवाज़ में कहा.

— 'ऐ... खड़ी हो जा चुप! उठके खाना खा ले... तेरी सेवा टहल करने ना आयी मैं... दो दिन बाद मुझे वापस लौट जाना है... और यह कि तू जच्चा-सी पड़ी है... तुझे शर्म ना आ रही. बच्चे और मनीष जी परेशान हो रहे हैं. उठ...!!! खड़ी हो ईब.... ज़्यादा ना नुकुर ना करियो. तू जाने है फिर....' रीमा की डांट ने असर किया. साधना बिना हील-हुज्जत किये उठ बैठी. उठने में उसे रीमा के सहारे की ज़रूरत पड़ी.

साधना की हालत देख, रीमा मन मसोसकर रह गयी. उसका दिल किया कि वह साधना को उसकी इस हालत के लिए खूब डांटे. पर खाना खिलाना पहले ज़रूरी लगा.

डांट लगा-लगाकर उसने साधना को अपने मन की संतुष्टि तक खाना खिलाया.

— 'एक बात बता... या क्या स... तू इतनी बावली कसे हुई. अरे के लगे थी वो तेरी जो तू इतना मातम मनावे है....' उसकी जूठी थाली पास पड़ी मेज़ पर सरकाते रीमा पूछ बैठी. मनीष रीमा को सब तफसील से बता चुके थे.

'क्या खाये जा रहा तुझे.... बता मुझे...' उसके जवाब की लंबी प्रतीक्षा में मिले उसके मौन पर रीमा का स्वर ढीला पड़ा.

'कुछ... कुछ भी तो नही ...' आवाज़ में फांस थी.

'बता...'

'रहने दे... छोड़!' उसे आशंका थी कि उसकी मनोस्थिति कोई न समझेगा.

'तुझे मेरी सौं...बता...!' साधना ने रीमा के चेहरे को स्नेह से छूआ... आंखों का मूक आग्रह, मूक आंखों से पढ़ा गया.

हाले-हौले लब हिले —

-'रीमा, उसकी शिराओं में दौड़ता लहू किस वक़्त पीर बन उठा और उस हूक से किस वक़्त उसने छुटकारा पाया यह तो वही जाने. पर बताने वाले बताते हैं कि मरने वाली सुबह की सारी रात उसने काम किया... सारे घर के कपड़े धोने के बाद.... हर चीज़ की सेटिंग कर, रसोई को नये सिरे से सेट किया. पति और बच्चों के सोने के बाद सुबह चार

बजे तक घर का हर कोना ऐसे सजाया उसने जैसे ज़िंदगी और गृहस्थी की नयी शुरुआत हो...' साधना की आवाज़ में ठहरेपन का एहसास रीमा को अंदर तक भिगो गया...

मात्र हूंकारे में गरदन हिलायी उसने.

'...जाने क्या सोच-विचार किया होगा उसने अपनी नयी यात्रा के लिए रीमा, कि इसी बार के उसके जन्मदिन पर दिया बच्चों का तोहफ़ा, नया सलवार-कमीज़, नहा-धोकर पहना और... और... जानती है... पूरा शृंगार किया हुआ था उसने....' अब साधना की आवाज़ में कंपन्न उतर आया था.

— 'कितना-कितना उत्ताप उठा होगा उसके हूकते हृदय में रास्ते भर.... देखने वाले बताते हैं... कि सुंदर सलोना मुखड़ा रेल के नीचे आते ही इतना अलोना, असौम्य हो गया कि कई देखने वालों को चक्कर आ गये और कई लोगों को उल्टियां हो गयीं थी...!!!' आवाज़ के साथ अब आंखें नम होने लगी थी.

रीमा चुप रही. पर, साधना के कंधों पर रखे उसके हाथ लगातार उसके कंधे, बाजू, कमर सहलाये जा रहे थे. वह उसके अंदर का जमा कचरा बाहर निकालना चाहती थी. वह कचरा, जो संवेदनशील लोगों को जल्द ही राख़ के ढेर में तब्दील कर देता है.

— 'सुना है आत्महत्या करने के और भी कई आसान तरीक़े हैं जिनसे पलक झपकते ही इंसान को आसानी से मौत हासिल हो जाती है.' ऐसे में रेल के नीचे कटना .... उफ़! सोचकर ही दिल दहल जाता है. यदि सोचने भर से ही दहल जाता है दिल तो फिर बिन्नी कैसे कट गयी...? ग़लत सोचते हैं लोग कि रेल के नीचे कटना मुश्किल है सचमुच इतना मुश्किल न होता होगा ये... हैं ना रीमा...?' साधना की आंखों से अविरल धारा फूट निकली.

रीमा आश्चर्य से साधना को देख रही थी. 'यह क्या... क्या कह रही है साधना...'

-'या फिर बिन्नी की ज़िंदगी ही इतनी मुश्किल कर दी गयी थी कि उसे रेल के नीचे आकर कटना भी सबसे ज़्यादा आसान लगा... ओह....! बिन्नी, काश! काश ..... मैं तुम्हारे लिए कुछ कर पाती...' साधना की हिचकी बंध गयी.

रीमा उसकी हालत देख अंदर ही अंदर द्रवित हो उठी. वह समझ गयी साधना के भीतर कोई गांठ है यदि वह समय रहते न खुली तो बड़ी मुश्किल होगी. बड़ी ही मुश्किल....

-'ओह... सच कहती है साधना. यह तो बहुत ही बुरी बात हो गयी... सचमुच... बेचारी बिन्नी....' यकायक रीमा ने उसके दर्द में ख़ुद को शामिल कर लिया.

-'फिर क्या हुआ...? मतलब... उसके पति, बच्चे, ससुराल वाले... किसी को तो उस पर दया आयी होगी. कोई तो उसकी बड़ाई कर रहा होगा...?' रीमा ने उसकी आंखों में झांकते हुए पूछा.

'क्या होना था!... कुछ भी नहीं! कुछ भी तो नहीं... उसकी मृत्यु के दूसरे दिन स्थानीय समाचार-पत्र में ख़बर छपी 'रेलवे में कार्यरत, कर्मचारी रमेश की पत्नी ने गृहक्लेश के चलते रेल के नीचे आकर आत्महत्या की.' इतनी सी... बस दो लाइनों की ख़बर. जिसमें न तो बिन्नी थी. न ही उसकी ज़िंदगी के दुख-दर्द. और तो और... उसका लिखा सुसाइड नोट तक उसकी सास और उसके ननदोई ने पुलिस के घर में पहुंचने से पहले ही ग़ायब कर दिया था. यहां तक कि उसके तीनों बच्चों का बयान तक उनके पिता के बचाव में दिलवाकर उसे निर्दोष साबित करवा दिया गया....

......दया... सारी रात गरम लिहाफ़ में मस्ती से सोता उसका पति सुबह लोगों से कह रहा था कि — 'झगड़े किस घर में नहीं होते. पर इसने ऐसा क़दम उठाकर तो उसकी समाज में नाक ही कटवा दी.' उसके जाने का उस पर क्या असर होने वाला था. कुछ भी तो नहीं... अलबत्ता उसे इसका फ़ायदा ही हुआ कि बिना रुकावट अब वह अपनी प्रेमिका के साथ रह सकता है.

...और हां... बड़ाई... वो, जो उसके ससुराल वाले हैं ना... वही... जो, उसके जीते जी उसे एक अच्छी समझदार बहू होने का तमगा देकर, अपने पति का अत्याचार सहने पर विवश करते रहे सदा. उसके ऐसा करने पर, उसे ही ग़लत ठहरा रहे थे. उनके अनुसार- 'कम-स-कम इन बच्चों का तो सोचती. बेटी घर में जवान बैठी है. ऐसी भी क्या आग लगी थी कि पति, पति की ही रट लगाये रहती थी. मनहूस कहीं... सारे घर के मुंह पर कालिख पोत गयी. 'उफ... उसकी इतनी निष्करुण अवहेलना. आत्मरत स्वार्थी सभी.' आंखों के ज्वार भाटे की खेप में तनाव और दुख की नोकों से पिसे उसके वे क्षण. मन की उग्रता में कोई बांध नहीं. देखती रही रीमा, अपलक कई पलों तक.

— 'हम्म... सही कर रहे हैं वो... कायर लोगों का

साथ कौन देता है...' एकाएक रीमा का स्वर तीखा हो उठा.

-'क्या मतलब...' साधना जैसे सोते से जागी.

-'और क्या... आत्महत्या करना को बड़ी बात ना... जी कर दिखाती तो मानते कि तेरी बिन्नी कायर ना थी. अरी, किसी भी परेशानी का हल मरना कोई है. तू भी ऐसी. तेरी बिन्नी भी ऐसी. तू भी मर जा... तू भी तो परेशान है. बिन बाप की थी तू... जब पांच साल पहले मां मर गयी थी तो वो दुख क्यों सह लिया तूने... मर जाती. जवान भाई को मार दिया आतताइयों ने ८ साल पहले जब भी न मरी थी तू. जवान भतीजा सड़क दुर्घटना की भेंट चढ़ गया. तुझे मर जाना चाहिए था जब. उसकी पत्नी को भी तो आत्महत्या कर लेनी चाहिए आख़िर तीन माह की बेटी गर्भ में थी उसके और बेटा ढाई साल का गोदी में... बावली है वह तो... भला क्यों जी रही. बग़ैर पति के तो मर जाना चाहिए उसे....' रीमा का सब्र जैसे जवाब दे गया था.

उसका रौद्र रूप देख साधना भौंचक रह गयी.

-'मैं... मैं ... तो...' साधना का गला सूख-सा गया.

-'क्या...मैं तो... मैं तो!... बता मुझे....? किसके जीवन में परेशानी ना है... तू ख़ुद कितनी-कितनी परेशानियों से बाहर निकली है... कितने भी उदास, हताश हों, आत्महत्या के ख़्याल के बहुत बहुत...बहुत पास पहुंच कर भी, कई बार लौट आते हैं हम...क्यों...?' रीमा ने सवाल दागा.

-'अपने बच्चों का मुख देखकर...' साधना के होंठों से अनायास निकला.

-'हां... मां की असली ताकत उसके बच्चे हैं... उन्हें देखकर. उन्हें सोचकर. रोज़ दिन-ब-दिन जहन्नुम बनती इस दुनिया में बच्चों को यूं अकेले छोड़कर जाना कौन-सी मां चाहेगी भला, बता तो...! दूसरे, ये जो आत्महत्या करने वाले लोग हैं, मुझे लगता है इन्हें परिस्थितियां कम मज़बूर करती हैं आत्महत्या के लिए बल्कि इनमें कोई मानसिक बीमारी होती होगी. तू तो ख़ूब पढ़ी-लिखी है सब जानती होगी. मैं तो जब भी तेरे से कम पढ़ी हूं. पर इतना दावे से कहूं... जिसे आत्महत्या करनी हो वो भरे पूरे परिवार में भी कर लेवे. और जिसे न करनी हो या जिसकी मानसिक स्थिति मज़बूत या वो जो तुम कहो विल पॉवर मज़बूत हो तो सारी उम्र अकेलेपन से ऊबकर भी नहीं करता.'

साधना उसकी बात ध्यान से सुन रही थी.

-'जानती है, जाने कितनी स्त्रियां बिन्नी से भी ज़्यादा बुरी हालत में जीवन बिता रही हैं. कुछ हैं जो अपनी स्थितियां सुधार रही हैं. कुछ हैं जो अपने प्रति होते अत्याचारों के खिलाफ़ उठ खड़ी हुई हैं. ऐसा ही कुछ करती बिन्नी तो एक मिसाल बनती. पर अब क्या हासिल... जो कमाया ज़िंदगी भर वह भी खो गयी बावली.

--- जाने है... परिस्थितियों से भागे लोग... भगोड़े होते हैं, वो चाहे घर से भागे हों, चाहे देश से भागे, चाहे दुनिया से, या फिर ज़िंदगी से... जानती है न तू, भगोड़ों का कहीं सम्मान नहीं होता... निषिद्ध पथ के राही किसी के संगी नहीं होते... और सुन, धीरे-धीरे किसी के गम में यूं घुल-घुलकर मरना भी आत्महत्या समान है. सोच ले...!!! तेरा भी तनिक सम्मान न करूंगी मैं... ईब खड़ी हो ले बस...!'

ख़ामोशी ठहर गयी दोनों के मध्य. साधना अपलक रीमा को देखे जाती रही. शब्दों का मानों अकाल पड़ गया था. कई क्षणों की नीरवता के बाद रीमा उसके सिर पर प्यार से हाथ फेर, जूठे बर्तन लेकर रसोईघर में चली गयी.

बात गहरी थी. गांठ खोलने में सक्षम.

वीरान से कमरे में मौन बैठी साधना, अंबर रूपी छत को, सूनी आंखों से टोहती हुई, लरजती हुई ख़ामोशी में जैसे उसे पुकार उठी — 'देखो, बिन्नी, देखो.... तुम्हारे जाने से किसी का जीवन नहीं रुका. समय पानी-सा बह रहा है और आयु नदी-सी. पर तुम एक जगह क्यूं ठहर गयीं... क्यूं?' सवाल बेमायने नहीं था काश, समझता ऐसे जाने वाला.

उम्र का मौत को ठेंगा दिखाना, समय से विद्रोह कर अपनी मर्ज़ी से उसमें विलय हो जाना... और निरंकुश बगछुट दौड़ती ज़िंदगी का ठगी-सी, उसे जाते देखते रहना... अब धीरे-धीरे सब उसकी स्मृति से लोप हो रहा था...

ग्यारहवें दिन का नया सवेरा था... साधना के माथे पर ठंडा-ठंडा, गहरा लाल सूरज आज पूरी शान से दमक रहा था.

बी- २८५, श्रद्धापुरी फेज- २,
सरधना रोड, कंकर खेड़ा
मेरठ - २५०००१.
मो. : ९०१२३३९११४८
poonam.rana308@gmail.com

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है. - संपादक

ग़ज़लें

राजेंद्र 'निशेश'

सहरा सहरा भटका कौन,
बुरे वक़्त-सा अटका कौन !
जीने की उम्मीद लिये था,
तब सूली पर लटका कौन !
इस बस्ती में प्यार बहुत था,
फिर आंसू-सा टपका कौन !
पास नदी के वह रहता है,
बिलख रहा है प्यासा कौन !
तिनका-तिनका घर बनता है,
फिर आंधी में बिखरा कौन !
उम्मीदों के पंख लगाये
परिंदे-सा फिर भटका कौन !

२६९८ सेक्टर ४०-सी,
चंडीगढ़-१६००३६

सच्चिदानंद 'इंसान'

जाने क्यों हर ज़ख़्म चुप था चुप रहीं ख़ामोशियां ।
फिर भी तेरे दर्दो-ग़म को कह गयीं ख़ामोशियां ।।
जानता हूं हर ख़ुशी रूठी है तुझसे बेज़बां ।
मुद्दतों से कटती आयी अन कहीं ख़ामोशियां ।।
वक़्त के संग बदले कितने रंग तो गुलशन भी थे ।
क्यों मगर बदली निगोड़ी नहीं ख़ामोशियां ।।
जब परिंदे लौट आते शाम में शाख़े-शज़र ।
शोरो गुल एक लम्हे भर की फिर दिखीं ख़ामोशियां ।।
हो गया अरसा तिरे लब पे किसी मुस्कान की ।
आयेगी लेकर तवस्सुम है यकीं ख़ामोशियां ।।
दस्तकें इंसान ने दीं दर पे तेरे अनगिनत ।
जाने क्यों हर बार उसको थी मिलीं ख़ामोशियां ।।

सहारा मिशन स्कूल, मुन्दीचक,
भागलपुर (बिहार) -८१२००१.

लक्ष्मीकांत पांडेय

दिल को बहलाने तेरी याद चली आयी है,
साथ में अपने ख़ुशियां हज़ार लायी है ।
तुम तो सीधे मुंह बात नहीं करते हो,
याद तेरी उल्टे पांव चली आयी है ।
तुम्हें मनाने की कोशिश बहुत की मैंने,
तुम तो मानी ही नहीं, याद चली आयी है ।
तुमने रोका था बहुत फिर भी वो मानी ही नहीं,
आज मेरे पास तेरी याद चली आयी है ।
मैंने भी चाहा था वो आये ही नहीं,
फिर भी दबे पांव तेरी याद चली आयी है ।
मैं ख़ुश हूं, उसे रोकूं तो क्यों कर रोकूं,
तुम नहीं, न सही, याद चली आयी है ।

सी-३४, केंद्रीय विहार,
सेक्टर ३८, नेरुल, नवी मुंबई-४००७०६.
मो. : ७०८०६०३३५९/९३२१०२३७३०

नवीन माथुर 'पंचोली'

लोग मिलते रहे साथ चलते रहे ।
रास्ते यूं हमारे निकलते रहे ।
और चलता रहा उम्र का सिलसिला,
साथ कितने हमारे बदलते रहे ।
रतजगों से हमारा रहा वास्ता,
ख़्वाब लेकिन निग़ाहों में पलते रहे ।
मुश्किलें राह में पास आयीं मगर,
लड़खड़ाते रहे और संभलते रहे।
महफ़िलों में सदा रोशनी के लिए,
रात जलते रहे और पिघलते रहे ।

अमझेरा, ज़ि : धार (म. प्र.)-४५४४४१.
मो. : ९८९३११९७२४

कहानी

'बिरवे'

सुभाष रंजन

आवारा कुत्ते सुबह से कई बार गश्त लगा चुके थे. घूम-फिर कर कभी वे घर के पिछवाड़े तो कभी अगवाड़े चक्कर काटते रहे! उनकी हैरानी की अभिव्यक्ति उनके क्रिया-कलापों द्वारा परिलक्षित थीं. उनमें से कोई दरवाज़े पर लटकते ताले को खड़े होकर मौन निहारता तो कोई खिड़कियों से अंदर झांकने का असफल प्रयास करता, सूंघता, पूंछ हिलाता, वांछित फल की प्राप्ति न होते देख मुंह से मुंह सटाकर कर आपस में वार्ता करता और तदुपरांत गश्ती के लिए पुन: निकल पड़ता....

रोज़ की तरह आज भी बाग़ीचे में पक्षी चहचहा रहे थे, पेड़-पौधे झूम रहे थे, सूरज अरुणिमा बिखेर रहा था पर न तो 'काकी मां' आज फूलों की क्यारियों में पानी देती दिखीं और न ही तुलसी चौरे पर सूर्य को अर्घ्य अर्पण करते! आज अगर वह होतीं तो 'श्यामा संगीत' बज रहा होता, कुत्तों का झुंड उनके आगे-पीछे मंडरा रहा होता और बार-बार वह कुत्तों को 'दाड़ा-दाड़' (रुको-रुको) का निर्देश दे धमका रही होतीं. और कुत्ते उछल-उछल कर उनके हाथ से रोटी, ब्रेड या बिस्कुट लपक रहे होते... पर आज यहां विचलित सन्नाटें पसरे पड़े थे.

विश्वास नहीं होता कि यह दृश्य अब कभी नहीं दिखेगा! कुत्तों की यह छीना-झपटी, 'काकी मां' का यह वाक जाल, रोज़मर्रा की ज़रूरतों की फ़ेहरिस्त लिये अब वह मुझसे कभी नहीं कहेंगी कि 'बाज़ार जाच्छिश, आमार जोन्ने दु टो बेगुन, आढ़ाई सौ सीमा आर... एने दिबी.' अब मैं भी मन ही मन नहीं खीझूंगा कि आ गयी. रोज़–रोज़ 'एटा कोरे दिस, ओटा कोरे दिस...' (यह करो, वह करो) बोलने के लिए.

आज उनके जिस्म का अभिनय ख़त्म हो चुका था. सांसें बेक़ाबू होते-होते थक चुकी थीं. आवाज़ बेआवाज़ हो चुकी थी. वह एक लाश में तब्दील हो चुकी थीं. ... मेरे स्मृति पटल पर यह बात कौंधती रही कि कुत्ते अब कहां उछल-कूद करेंगे, बेफ़िकर घूमती तितलियों को कौन निहारेगा, बाग़ीचे से पीले पत्तों को कौन एक-एक कर साफ़ करेगा! ... पत्तियों की सरसराहट, पंखुड़ियां खोल रही नन्हीं-नन्हीं कलियां, सूरज की पहली किरण, ओस की बूंदों से छिटकती इंद्रधनुषी छटा मानो आज भी काकी मां के लिए प्रतीक्षारत थी!

हर सुबह वह इन क्षणों को भरपूर जीतीं. आंखों में संतोष, मुख पर आत्मिक सुख, पशु-पक्षियों एवं पेड़ पौधों से घिरी काकी मां को देख यह अंदाज़ लगाना मुश्किल था कि वे इस दौड़ती-भागती दुनिया में तनहा एवं निःसंग हैं. इन्हीं पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों के मध्य वह कहीं खोयी-खोयी सी रहती. पर आज...

भटके समय की पदचाप, रिश्तों की टूटी पतवारें, पांव पसारे अहम्, खींचातानी, ... परती भूमि में तब्दील हो चुकी 'काकी मां' जीवन की पहेली को, उकताते अकेलेपन के सहारे जूझ रही थीं. अपनों ने इतना दर्द दिया, इतना रुलाया कि इन आंखों से अब आंसू की बारिश नहीं होती! जब तक 'काकू' थे, सुख का स्वाद था, प्यार और सामीप्य के क्षण थे, हिलोरें थीं, भविष्य का नक़्शा था. पर अब ज़िंदगी के रेगिस्तान पर कैक्टस पनपने लगे थे. आज की स्थिति ऐसी आन पड़ी थी कि अपनों के दो प्यारे बोल के लिए वह तड़पती रहतीं. एकाकी, नि:संग, ठूठ! देर रात

तक उनके कमरे की बंद खिड़कियों की दरारों से तेज़ रोशनी झलका करती, टी.वी. की धीमी आवाज़ आ रही होती. घर के एकाकी समय का एक मात्र साथी टी.वी. ही तो था.

काकी मां ने कभी काकू के साथ तिनका-तिनका बटोरकर नीड़ बनाया था. स्मरण है दिन भर मजूरी कर 'काकू' चुग्गा लाते, वह अधपेटा रह बच्चों को खिलातीं. न कभी मन का पहना, न मन का ओढ़ा, जो भी किया बच्चों के लिए, बच्चों का सोच कर किया. पढ़ाया-लिखाया, अपने स्तर से ऊंचा उठाया. पैसा-पैसा जोड़कर ज़मीन ख़रीदी, घर बनवाया. तब उन्हें कहां पता था कि एक दिन इन बच्चों के डैने फड़फड़ायेंगे, उड़ना सीखेंगे और उड़ चलेंगे. ... रह जायेगा खाली घोंसला और निःसंग 'काकी मां....'

सभी अपने-अपने घोंसलों में व्यस्त. एकाकी जीवन के इस ठहराव स्थल पर उन टूटे संदर्भों को जोड़ वह स्वप्निल संबंधों को जिया करतीं. रीता मन ख़ुशी से झूम उठता. समयानुसार बेटियां ब्याही जा चुकी थीं, बेटा नौकरी में आ चुका था. सब कुछ नियोजित, सपनों के साकार होने जैसा! सांसारिक नज़रिये से उनका जीवन सफल था पर... जीवन में रंग बरसने से पहले ही...

आज जब कभी भी कारुणिक मुद्रा ओढ़े वे दरवाज़े पर मौन खड़ी दिखती हैं, मन हाहाकार कर उठता है. मानो पत्थर की मूर्ति पर जल भरी दो बड़ी-बड़ी उदास आंखें मुझे निहार रहीं हों! अक्सर मैं इन परिस्थितियों से बचना चाहता पर आंखों से आंखें टकराने पर बरबस ही पूछ बैठता, 'कि! काकी मां केमोन आछेन, भालो आछेन तो?' मेरे पास भी बना बनाया प्रश्न था और उनके पास चिर-परिचित उत्तर, 'हें, भालो आछी' और वह आगे जोड़ती, 'कोथाय जच्छिश... ड्युटि... मेए कोरछे..'

कभी-कभी जब वह मुझे चाय पीते दिखतीं, निश्चित रूप से बुलातीं, 'आय! आय!!! चा खाबी, आय!!! बावजूद इसके कि मैं अभी-अभी घर से चाय पीकर निकला होता, कभी-कभार उनके साथ बैठकर चाय का आनंद लेता. साथ में अपने हाथों का बना नारकेल नाडू (नारियल का लड्डू) अथवा धान के लावे का मोआं (धान के लावे का लड्डू) साथ में झाल चानाचुर (झालदार चनाचुर) अथवा नूनता नमकीन बिस्कुट, कुछ न कुछ ज़रूर होता. कमरे में बेतरतीबी से रखा हुआ असबाब, धूल भरी परतें, क़लई झड़े शीशे, बंद पड़ी घड़ियां, हिलते-डोलते कैलेंडर, फ्रिज़ पर फ़ोटो फ्रेमिंग किया हुआ मधुर यौवन की याद दिलाता काकु-काकी मां का चित्र! इन दृश्यों को देख उनके अंदर के भाव को सहज ही पढ़ा जा सकता था.

परिचय

विज्ञान, स्नातक (रसायनिकी में प्रतिष्ठा)

ः प्रकाशन ः

परिकथा, अक्षर पर्व, जनपथ, सर्वनाम, लोकगंगा, समय के साखी आदि पत्र पत्रिकाओं में कहानी, आलेख, पुस्तक परिचर्चाएं प्रकाशित; बंगला नाट्य संस्था 'अन्वेषण' दुर्गापुर का संस्थापक सदस्य.

ः लेखन का उद्देश्य ः

अपने हिस्से का सच जानने के लिए लोग आईने का सहारा लेते हैं, मैं शब्दों का उत्खनन करता हूं. मेरी बेचैनी, मेरी अकुलाहट, मेरी चिंता, मेरी भावना, मेरी उदभावना, मेरे प्रश्नों से जूझते रहने का ज़रिया है लेखन.

ः संप्रति ः

सेल, स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड के दुर्गापुर इस्पात संयंत्र में कार्यरत.

विभिन्न बीमारियों ने खाता खोल रखा था. गोलियों के सहारे ज़िंदगी की मियाद बढ़ायी जा रही थी. अक़्सर वह गोली द्वारा नींद को बुलातीं, चीनी को नियंत्रित रखती, फलस्वरूप अलसाई पलकें वृद्ध झुर्रीदार आंखों पर ढलक आने को बेकरार दिखतीं. उन्हें देख कभी-कभी मेरी सोच बेनाम रास्तों पर भटका करता. लानत भरी ज़िंदगी, मौत ही अधिकतम समस्याओं का समाधान पर घुट-घुट कर जीने को अभिशप्त! डॉक्टर अक्सर कहते, 'आप नार शुगार बेड़े जाच्छे. आपनी चिंता कोरछेन. चिंता कोरबेन ना आर ऊसुध समये खाबेन.' वही चिर-परिचित अम्लान हंसी चेहरे पर उभर आती. वह सच को छुपातीं, झूठ को सहारा बनातीं और कहतीं, 'ना! ना! चिंता किसेर, ऐई तो भालो आछी!!'

स्मृतियों में लिखीं बातें रह-रह कर याद आने लगीं. अरिंदम दा की शादी को अभी कुछ महीने ही हुए थे. गहन छानबीन एवं देख-सुन कर 'काकु-काकी मां' ने पुत्रवधू का चुनाव किया था. पढ़ी-लिखी एवं संस्कारी पुत्रवधू पाकर वे निहाल हो उठे थे. पर... समय के साथ-साथ दरारें उभरने लगीं. चौके से उठी आग की लपटों में विरक्ति का भाव दिखने लगा. लगभग अनपढ़ 'काकू-काकी मां' और पढ़ी-लिखी संभ्रात परिवार से आयी 'शुभ्रा बोइदी' के मध्य नीतिगत एवं संस्कारग्रस्त टकराहट दिखने लगी. मधुर,

मीठे कंठ स्वर में कड़वाहट ने डेरा जमा लिया. यदाकदा 'काकु' का स्वर भी ऊंचा उठने लगा. प्रतिक्रिया स्वरूप रही-सही कसर खाने पर निकाली जाने लगी. अरिंदम दा तटस्थ बने रहने की भूमिका में दिखते पर यदाकदा आंच उन पर भी आन पड़ती. 'काकी मां' न पति का पक्ष ले पातीं और न ही पुत्र-पुत्रवधू का. दिन-प्रतिदिन इनके मध्य पिसती ही जा रही थीं 'काकी मां'. एक तरफ़ बाप तो दूसरे तरफ़ बेटा! ... इधर बेटी-दामाद का आना-जाना बढ़ने लगा. सप्ताहांत अमूमन वे यहां दिखने लगे.

और रोज़-रोज़ की किचकिच से निजात पाने के लिए अरिंदम दा को एक दिन शुभ्रा बोउदी की ज़िद के आगे अस्त्र डालना ही पड़ा. उन्होंने पास के शहर में तबादला करा लिया. चाहते तो यहां से भी आ-जा सकते थे पर उन्हें तो यहां से शिफ़्ट होना था!

'किसी पुरुष के लिए इन परिस्थितियों में इससे बेहतर विकल्प होता है क्या?' प्रश्न अरिंदम दा ने किया था. उस रोज़ मुझे मौन रह जाना पड़ा. यही उनके प्रश्न का सही उत्तर भी था. जिस वक़्त अरिंदम दा मुझसे प्रश्न कर रहे थे, मेरे ज़ेहन में रह-रह कर 'वरुण दा' का चेहरा याद आ रहा था. 'अरिंदम दा' तो फिर भी भाग्यशाली हैं कम से कम घर की इज़्ज़त को सरेआम नीलाम होने से बचा तो लिया पर 'वरुण दा...'

विश्वास नहीं होता किसी संतान को अपने माता-पिता से भेंट करने के लिए ऐसा भी करना पड़ता होगा जैसा कि अक्सर 'वरुण दा' को करना पड़ता था. मिलना तो दूर माता-पिता से बात तक करना दूभर था. इच्छानुसार मां-बाप से बात करनी हो तो डिपार्टमेंट में रखे दूसरे सिम कार्ड का व्यवहार करते. आज भी मां-बाप को ज़रूरत आन पड़े तो डिपार्टमेंट से पहले निकल कर मिलना पड़ता है. वे जब अपने मां-बाप से मिलने जा रहे होते हैं तो सभी सहयोगियों को यह जानकारी रहती कि वे मां-बाप से मिलने जा रहे हैं. ताकि देर-सबेर होने पर पत्नी फ़ोन करे तो उन्हें इतल्ला कर दें कि वरुण दा जॉब में फंसे हुए हैं क्योंकि उस दरम्यान अवश्यभावी रूप से उनका मोबाइल स्विच्ड ऑफ रहता है.

वरुण दा, हमारे सहकर्मी. उनके साथ मैं पिछले बीस वर्षों से कार्यरत रहा हूं. उम्र में मुझसे बमुश्किल दो चार वर्ष बड़े हैं. अतीव भद्र, छल, छद्म से दूर. परिवार का एक मात्र कमाऊ पूत पर आज मां-बाप का दायित्व भी बेरोज़गार भाई के कंधे पर! चाह कर भी कुछ नहीं कर पाते. जो नहीं होना चाहिए, वही सब उनके साथ होता रहा है. मामला केवल अविश्वास का ही नहीं स्वार्थ का भी था जिसने ज़िंदगी से ज़िंदगी की दूरी बढ़ा रखी थी. न चाहकर भी उम्र की ढलान पर बाप-मां को निर्वासित होना ही पड़ा... भोगे हुए अनुभव गोता लगाते रहे, कसक सालती रही, पर जितनी गुज़रनी थी गुज़र चुकी.

मामला थाने तक पहुंचा. आरोप संगीन था. लपेटे में 'वरुण दा' ही नहीं, बूढ़े मां–बाप एवं छोटे भाई को भी लिया गया था. दहेज उत्पीड़न के आरोप का दंश झेल रहे परिवार को सामाजिक बहिष्कार का सामना भी करना पड़ा. बहुत चाह कर भी वे अपने कुनबे को नहीं बचा पाये. थाने से मुचलके पर छूटकर आये मां-बाप एवं छोटे भाई के लिए और कोई विकल्प बचा भी नहीं था. ... सरकारी कर्मचारी रहे वरुण दा को अपनी नौकरी बचानी महंगी पड़ रही थी.

हारी हुई बाज़ी जिस शर्त पर जीती जा सकती थी उसी का ख़ामियाजा आज भी भुगत रहे हैं 'वरुण दा.' सोच कर भी हैरानी होती है कि अपने ही घर पर आप डाका डाल कर आज वे पैसा जोड़ते हैं तब जाकर वे अपने बेटा होने का फर्ज़ अदा करते हैं. घर के लिए ख़रीदी गयी सब्ज़ी-भाजी से पैसा बचाकर .... इसके अलावा उनके पास उपाय ही क्या है?

इस मायने में सौभाग्यशाली रहे है अरिंदम दा. मौक़ा-बेमौक़ा उनका आना-जाना यहां बना रहा पर न तो यहां 'शुभ्रा बोइदी' कभी आतीं और न ही बच्चों को आने देतीं. काकी मां को ही उनके न आने के कारणों की व्याख्या करनी पड़ती. कभी बच्चों की पढ़ाई का बहाना होता तो कभी...

पर वरुण दा के माता-पिता इस मायने में भाग्यशाली रहे. उनका बेटा अपने 'ठाकुर दा, ठाकुर मां' पर जान छिड़का करता. लाख मनाही के बावजूद कभी ट्यूशन जाने के नाम पर तो कभी दोस्तों से मिलने के बहाने वह घंटों ठाकुर दा-ठाकुर मां के साथ समय गुज़ारा करता. रूठा-रूठी, मान मनौबल और न जाने क्या-क्या छलका करता. हतभागी काकी मां का कलेजा इन पलों के लिए सुलगता रहता. इसलिए तो छोटे-छोटे बच्चों को खेलते देख पुकारा करती, 'आय बाबा आय, अनेक दिन तोदेर मुख देखिनी, खेलबी आय! चाकलेट देवों, मिस्टी देवों, खेलना देवों....पर बच्चे आने से कतराते, अपने-अपने खेलों में मगन दिखते.

उस दिन बातों-बातों में उन्होंने आम के वृक्ष की ओर इशारा करते हुए मुझसे पूछा, 'अच्छा तुई आमेर ऐइ मोटा डाली टा नूआते पारबी?' (अच्छा, तुम आम की इस मोटी डाली को झुका सकते हो?) मैं कुछ बोलूं इससे पहले ही वह बोल पड़ीं,'आमी जानी एटा संभव नोए. आमराउ होलम सक्त-पक्त डाल, आज आछी — काल नेई. तवुओ तोरा आशा कोरीश... आमोदर मतो बुड़ो-बड़ी देरकाछ थेके- जे आमरा नुए थाकी. एटाकि संभव?' (मैं जानती हूं यह संभव नहीं! हम लोग भी मोटी डाली से सख़्त एवं लचक विहीन, आज हैं — कल नहीं! तब भी तुम लोग आशा करते हो... हम लोगों जैसे सख़्त एवं लचक विहीन बूढ़े-बुढ़ियों से हम लोग झुके रहें. क्या यह संभव है?) उनकी ज़िंदगी काग़ज़ पर काली स्याही से लिखी एक शोक गीत सा प्रतीत हो रही थी!

स्मरण है काकू द्वारा प्रतिवर्ष परीक्षा के इर्द-गिर्द नाते रिश्तेदारों पर पाबंदी इनायत की जाती थी कि वे इस दरम्यान यहां न आयें. संबंधित सभी पते पर काकू पोस्टकार्ड द्वारा आदेश संप्रेषित कर दिया करते थे. बग़ैर नागा वे बच्चों को साइकिल के कैरियर पर टांगे ट्यूशन लाते, ले जाते थे. जब तक बच्चों ने मैट्रिक नहीं किया, यह उनकी दिनचर्या में शामिल रहा. चाह थी कि बच्चे कुछ बनें. बने भी पर... आज वही बच्चे... शायद काकू लोभ पर निवेश कर चुके थे जहां से मूलधन की वापसी संभव नहीं थी.

काकू के प्रश्न का समुचित उत्तर मैं आज भी ढूंढ़ रहा हूं. बेटा सपत्निक जब घर छोड़कर जा चुका था तब मुझसे एक रोज़ उन्होंने पूछा था, 'अच्छा बोल तो तोरा चाकरी कोरीस, तोदेर, जखन तोर ऑफ़िसर रा किछु बोलेन, तोदेर इच्छा न ताकलेऊ सुनते होय. तोरा तो चाकरी छेड़े चोले जास ना. किंतु घरे बाबा-मां जदी मनोप्रुतो किछु न बोलेन तो तोरा घर छेड़े चोलेजास, केनो बोल तो? ओखेन पैसा दिये बेंधे राखार खमता आछे ताई ना चाकरी जाबार भय थाके सत्ती कथा बोल तो!!!' (अच्छा तुम मुझे समझा सकते हो, तुम लोग नौकरी करते हो, वहां जब तुम्हारे अधिकारी गण तुम लोगों से जो कुछ भी कहते हैं, तुम्हारी इच्छा न रहने के बावजूद सुननी पड़ती है. तुम लोग नौकरी छोड़ कर तो नहीं जाते हो लेकिन घर में मां-बाप अगर मन माफ़िक कुछ न बोलें तो घर छोड़कर चले जाते हो, क्यों बोल सकते हो? वहां पैसों के बल पर बांधे रखने की क्षमता होती है या नौकरी जाने का डर रहता है, सच बात बोलो तो!!)

एक दिन यों ही चलते-चलते... ख़्वाब में भी किसी ने नहीं सोचा था. हट्टे-कट्टे काकू को अकस्मात सांस लेने में परेशानी होने लगी. शरीर पसीने से तरबतर हो उठा. रात का तीसरा पहर और जाड़े का दिन, अकेली काकी मां. बेचारी! बदहबास सी धाड़ें मारती रहीं. अगल-बगल वालों को जब तक पता चला, देर हो चुकी थी. डॉक्टर ने भरसक चेष्टा की पर कुछ किया नहीं जा सका, पल्स फ़ेल थी. जिस खूंटे के सहारे ज़िंदगी बंधी थी, वह भी आज... अझुराई-सी काकी मां की आंखें अंधेरे में दीये की तरह झिलमिला उठीं, बचाकर रखे गये आंसू खरचती रहीं. घर के अंदर पार्थिव शरीर के पास काकी मां के बैठे रहने का दृश्य देख डर-सा लग रहा था. बेजुबान! सतत व्याकुल!! निस्पंद!!!

उस दिन शुभ्रा बोउदी भी दिखीं. बोउदी के चेहरे पर उदासी भी थी, आंखों में आंसू भी छलके थे. विधिवत काकू के श्राद्ध कर्म में उनकी सक्रिय भागीदार भी बनी रही थी. बारह दिनों तक दादा-बोउदी, बेटी-जमाई, साथ में बच्चे भी, जमघट दिखता रहा. उनकी आंखों में आंसू देख लगा मानो ये प्रायश्चित के आंसू थे. ख़ुशी हो या ग़म परिवार साथ रहे तो अच्छा लगता है. मन में रह रह कर यह बात आ रही थी कि आज सब हैं, सिर्फ़ काकू नहीं हैं. काश काकू भी इन दृश्यों को देख पाते. सूना घर फिर से जीवंत हो उठा. शोक के इन दिनों में भी सचमुच काकी मां बच्चों में घुलमिल–सी गयीं. पर यह दृश्य क्षणिक था. श्राद्ध कर्म ख़त्म होते ही बेटा-बेटी अपनी अपनी गृहस्थी में लौट चले. ऐसा नहीं था कि बेटे ने साथ चलने का प्रस्ताव नहीं दिया. पर काकी मां ने उस प्रस्ताव को... पहली बार अरिंदम दा के प्रति मन वितृष्णा से भर उठा. काकी मां की यह कैसी ज़िद. काकू तो ज़िद्दी थे, जिस बात पर अड़ जाते थे, अड़े रहते थे पर काकी मां...

काकू के देहावसान हुए डेढ़ माह ही हुआ होगा कि एक शाम गेट खुलने की आवाज़ ने मेरे अवचेतन मन को सूचित किया कि काकी मां आ रही हैं. उनके गेट खोलने का विशिष्ट तरीक़ा मेरे कान अनायास पढ़ सकते थे. मन आशंकित था क्योंकि अभी–अभी शुभ्रा बोउदी उनके घर से निकलती दिखी थीं. अरिंदम दा नहीं थे. इन दिनों किसी न किसी का आना-जाना बना ही रहता है. कभी बेटी अथवा पुत्रवधू आती है तो कभी दामाद या बेटा. काकी मां इस

समय यहां क्यों? मेरे मौन में प्रश्न अंकुरता रहा. मैंने बग़ैर देखे ही घर के अंदर से आवाज़ लगायी, 'आसून, भितरे आसून!' इससे पहले कि मैं पूछू, 'केमोन आछेन काकी मां, भालो तो!' वह मेरे सामने फूट पड़ीं. मानो उनके अंदर बहुत कुछ बाहर आने को बेक़रार था. वह आये आंसू को एक हाथ से आंचल में पोंछती जातीं और त्वरित गति से ओंठ पर साड़ी के पल्लू से सिसकियों को रोकतीं, पर सिसकियां रह–रह कर भभक उठतीं. कुछ देर हम चुप बैठे रहे... शब्दहीन. हमारे मध्य अचल मौन पसरा रहा. रेखाएं खिंचती रहीं.

वे बोलीं, 'आमी की कोरी बोल तो, जे आसछे, दु टी कोथा सुनिये चले जाच्छे. केऊ बोलछे, आमाय सिटि सेंटर ऐर जमी लिखे दाउ, केउ एय घर टा लिखे दिते बोलछे! एखन शुभ्रा एसछिलो. ऑलमारीर चाभी चाईछिलो. बोले गेलो जे पैसा कुड़ी, जमी जमार काग़ज़ पत्रों से भालो कोरे निजेर हिफ़ाजते रखे देबे.' (मैं क्या करूं, बोलो तो! जो भी आता है दो बोल बोलकर चला जाता है. कोई बोलता है मुझे सेंटर की ज़मीन लिख दो, कोई इस घर को लिखवाना चाहता है. अभी–अभी शुभ्रा आयी थी. आलमारी की चाभी मांग रही थी. वह बोल गयी है कि रुपये-पैसे, ज़मीन जायदाद के काग़ज़ पत्र को वह अपने पास हिफ़ाज़त से रख देगी). वह कुछ सोचती हुई सी बोलीं, 'आमी कार कथा सुनी आर कार कोथा फेले दी बोल तो? जतो सब झामेला. आमी ऐई झामेलार मद्धे थाकते चायना! आमाय शांति ते थाकार व्यबोस्था करे दे देखी.' (मैं किसकी बात सुनूं और किसकी नहीं, बोलो तो? जिधर देखो झमेला. मैं इन पचड़ों में पड़ना नहीं चाहती. मुझे शांति से रहने की व्यवस्था करा दो). मेरे जवाब की प्रतीक्षा किये बग़ैर सन्नाटे को भंग करतीं वे उठ खड़ी हुईं. मानो वे अंदर तक ख़ाली हो चुकी हों. आंधी तबाही का निशान छोड़ कर चली गयी थीं. मैं देर तक सोचता रहा. एक मां दस को पालती है पर दस एक मां को ... मैं जानता हूं उन्हें हर पायों से सहारा चाहिए पर....

काश यह लड़ाई का अखाड़ा होता, न्याय और नीति की बातें होतीं पर यह तो घर है. एक ऐसा घर जहां प्यास ही प्रार्थना है, हवस ही नीयत है, अधिकतम बटोरने की चाहत की अरमान है, जहां संबंधों का अंकगणित एवं रिश्तों की आपसदारी खोया-पाया द्वारा नियंत्रित है, जहां फल खाने को सभी आमादा हैं पर पानी देने को कोई तैयार नहीं! यहां अर्थ धर्म नहीं तो क्या है!!!...

कभी अरिंदम दा तीनों पहर मातृ वंदना में लीन दिखते थे. दिन की शुरुआत भी चरण स्पर्श के पश्चात ही होती थी. मां आशी! मां ऐलाम! (बच्चों द्वारा घर से आते जाते किया जानेवाला संबोधन) आते-जाते अरिंदम दा के स्वर की गूंज दूर से ही सुनायी पड़ती थी. ... आज वही अरिंदम दा... समय और परिस्थितियां मनुष्य को कितना बदल देती हैं. काकू-काकी मां भी तो कहते रहते थे, 'पड़ पड़ निजेर जन्ने पड़. आमादेर जन्ने भावते होबेना!' (पढ़ो पढ़ो अपने लिए पढ़ो) हम लोगों के लिए सोचने की ज़रूरत नहीं!) ...क्या आज की स्थिति में काकी मां ऐसा सोच भी सकती हैं? कभी अनपढ़ काकी मां कहा करती थीं, 'शिक्खितो छेले-मे रा समाज के सटीक दिशा दिते पारे.' (शिक्षित लड़कियां ही समाज को सही दिशा दे पायेंगी). शिक्षित तो अरिंदम दा भी हैं और शुभ्रा बोउदी भी हैं. कम पढ़े-लिखे तो बेटी दामाद भी नहीं. आज जो दिख रहा है, यही समाज की सही दिशा है क्या?

अपनी छवि को बचाये रखना मुझे परिहार्य जान पड़ा. अंदेशा था कुछ बोलने पर अरिंदम दा कहीं उसी बात को दुहरा न दें. पहले भी कई मौक़ों पर वे कह चुके थे, 'तोर संगे तो तोर मां थाके न, तुई बुझबी ना! आगे मां के आन, किछू दिन संगे मां ओ बोउ के राख,तोखन बुझते पारबी कतो धाने कतो चाल.' (तुम्हारे साथ तुम्हारी मां नहीं रहती हैं, तुम नहीं समझोगे. पहले मां को लाओ, कुछ दिन मां के साथ बहू को घर करने दो, तब समझ में आयेगा कितने धान में कितना चावल होता है.) आज वही बात स्मरण में आ रही थी. सचमुच मां मेरे साथ तो नहीं रहतीं. वह मेरे साथ रहतीं तो क्या मैं भी ... शायद...

इन परिस्थितियों में मेरा व्यवहार बुद्धि, दुनिया के चलन का अनुसरण करने को प्रेरित कर रही थी. मैंने काकी मां से कहा, 'आमी काके बुझाबो, आमार कथा के सुनबे, आमरा होलम दर्शक, हे आमर सत्ता दर्शक!!' (मैं किसे समझाऊं, मेरी बात कौन सुनेगा. हम लोग दर्शक हैं. हां, सचमुच हम लोग दर्शक हैं.)

उनके चेहरे की विकृति मेरी बरदाश्त से बाहर थी. मैंने उनके चेहरे से दूर कहीं अन्यत्र नज़रें गड़ाये रखीं. वे बोलीं, 'हे सती सागरा दर्शक!' (हां सच में हम लोग दर्शक हैं.) शून्य दृष्टि को चेहरे पर चिपकाये कहते-कहते वे कुछ

क्षण रुकीं. उनके रुकने में किसी भाव की व्यंजना थी. वे बोलीं, 'आमरा अन्नेर घर पुड़ते देखी, भावी आमार घर सुरक्षित आछे, किंतु केउ सुरक्षित नेई रे. आज आमार एई दशा, काल...' (हम लोग दूसरों के घर को जलते देखते हैं, सोचते हैं कि हमारा घर सुरक्षित है. पर कोई सुरक्षित नहीं है. आज हमारी यह दशा, कल...)

वक़्त पंख लगाये गुज़रता रहा. साल भर पहले आज ही के दिन ... पर आज वार्षिक श्राद्ध के दिन भी न बड़ी बेटी आयी और न दामाद आया. काकी मां फ़ोन पर बार-बार बुलाती रहीं पर अनंदिता ज़िद कर बैठी कि पहले सिटी सेंटर की ज़मीन... बेटा तैयार नहीं! करे तो क्या करें काकी मां. छोटी बेटी मुंह से कुछ नहीं कहती पर हाव-भाव से समझा ही देती है कि ... बेटे की अलग ज़िद है. अगर ज़िद न पूरा करें तो रिश्ता तोड़ लेने की धमकी देता रहता है. तीनों को अलग-अलग देती भी रहती हैं पर संतुष्ट कोई नहीं!! और चाहिए... अभी चाहिए.

दो दिनों से वे बेसुध पड़ी थीं. ज्वर से शरीर तप रहा था. कल सुबह ही काम वाली बाई बोल रही थी. शाम उनके घर पर पास पड़ोसियों को देख ख़्याल आया. वहां का दृश्य देख मन कैसा–कैसा हो गया. पता चला कि पिछले चार-पांच रोज़ से वहां चूल्हा नहीं जला था. वे कुछ न कुछ रूखा-सूखा खा कर काम चलाती रहती थीं. संभवत: वे दो दिनों से भूखी भी थीं. छूंछी-ठाठर सी काकी मां को पास-पड़ोस से किसी ने चाय बनाकर पिलायी तो किसी ने रोटी सेक कर खिलायी. ख़बर तो अरिंदम दा तक पहुंचा दी गयी थी पर ... बेटियों ने तो पहले ही कह रखा था, 'संपत्तिर मोटा भाग दादा पाबे, आमरा केनो देखबो!' (संपत्ति का बड़ा हिस्सा भैया लेंगे, हम लोग क्यों देखें!)

हमने लाख प्रयत्न किया कि वे अस्पताल में भर्ती हो जायें पर तैयार नहीं हुईं. विगत में भी वे कई बार ऐसा कर चुकी थीं. मैंने एक बार उनसे पूछा भी था कि वे क्यों अस्पताल में भर्ती नहीं होना चाहतीं. वे विह्वल होकर बोली थी, 'तुई बुझते पारिस ना, आमी जोखन आसे पासेर रुगिर काछे बाड़ीर लकेदर देखी, आमार बुक टा फेटे पोड़े!' (तुम समझते नहीं हो, मैं जब अगल-बग़ल वाले रोगियों के पास उनके घर के लोगों को देखती हूं तो मेरा हृदय फट पड़ता है.) काश वे ऊसर होतीं या अपने को परती छोड़ पातीं. पर ईश्वर ने न तो उन्हें ऊसर बनाया था और न ही उसने अपने को परती छोड़ा था. ... हतभागी काकी मां!!!

उस दिन सुबह–सुबह वे कहीं जा रही थीं. संभवत: काली बाड़ी जा रही हों. कह रही थीं, 'आज मांमूनीर जन्मों दिन, ख़ुशी उनके चेहरे से छलकती दिखी.'

मैंने ग़ौर किया, उनके आगे पीछे कुत्तों का झुंड एक निश्चित दूरी बनाये उनके साथ चल रहा था. न जाने मेरे मन में क्या चुहलबाजी सूझी, मैं मज़ाक-मज़ाक में कह बैठा, 'काकी मां आपनी तो जेड प्लस सुरक्षा कबच एर भेतरे आछेन.' (काकी मां आप तो जेड प्लस सुरक्षा कवच के अंदर हैं.) वह समझी नहीं पर जब मैंने उनसे कहा कि 'मनो होच्छे आपनाके एरा वी. आई. पी. देर मोतुन स्कॉट कोरे नियेे जाच्छे.' (ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो ये आपको वी. आई. पी. की तरह स्कोर्ट करके ले जा रहे हैं.) वे मेरे कहने का आशय समझते हुए बोलीं, 'खूब सत्ती कथा बोलेछिस!' (तुमने सच ही कहा है). मुझे हंसते हुए देख बोलीं, 'एमा हांसछिस कैनो, सत्ती बोलेछिस ऐ कुकुर रा थाकले आमार ख़ूब साहस होय. रात बेरात... (अरे हंस क्यों रहे हो, सच ही बोले हो. इन कुत्तों के रहने पर मुझमें बड़ा साहस रहता है. रात बेरात...) कुछ रुककर बोलीं, 'देखबी एक दिन तोर ऐई काकी मां घरे मोरे पोड़े आछे आर ऐई कुकुर राई तोदेर ख़बर कोरछे.' (देखना एक दिन तुम्हारी यह काकी मां घर पर मरी पड़ी रहेगी और ये कुत्ते ही तुम लोगों को ख़बर करेंगे). उनके चेहरे पर फ़ीकी हंसी तिर आयी और मेरा चेहरा म्लान हो उठा.

और इस वाक़ये से कुछ दिन बाद ही एक दिन सचमुच काकी मां घर में गिरी पायी गयीं. बेतहाशा रक्त का रिसाव हुआ. कुत्तों ने भौंक–भौंक कर अगल-बगल वालों को अगाह किया. पर जब तक बात समझ में आती, बहुत खून बह चुका था.

□

त्वरित गति से ख़ून की व्यवस्था की गयी. किंतु यहां अस्पताल में भी वृद्धों के प्रति लापरवाही का आलम दिखा. वे एक मानवीय ग़लती का शिकार बनीं. उन्हें ग़लत ग्रुप का रक्त चढ़ा दिया गया और ... दुर्भाग्यवश उनके लिए जो रक्त लाया गया था उसे भी किसी दूसरे वृद्ध व्यक्ति को चढ़ाया गया और वे भी ... पर किसी ने आपत्ति दर्ज़ नहीं करायी न काकी मां की तरफ़ से और न दूसरे घर वालों की तरफ़ से... एक ही शव दाह गृह की बिजली भट्टी में आगे पीछे उन्हें

डाला गया. मैंने जब बात छेड़ी तो अरिंदम दा बोले, 'कि होबे आर बोले, जा हबार ता हो ऐई गेला!'

अभी मैं घाट से वापिस आया ही था. काकी मां के घर पर ताला पड़ चुका था. सभी वापिस जा चुके थे. काम वाली बाई हमारी प्रतीक्षा कर रही थी. नियम के अनुसार जो भी उनके घर में करना था वह कर रही थी. एकांत पाते ही वह बिफर पड़ी और बोली, 'की बोलबो दादा! आपनारा काकी मां के निये जखन पुड़ाते गेलेन, तखन बाड़ी ते दुई दिदी मिले काकी मार सब बाक्सोर ताला भांगलो,आलमारीर चाभी निये पुरो तच नच करे गहना, पैसा जा छिलो निये चले गेलो! तखन किंत बोऊदी छिलो न!' (क्या बोलूं भैया जी जब आप लोग चाची जी के दाह संस्कार के लिए निकले, ठीक उसी समय उनकी दोनों बेटियों ने मिलकर घर भर के बक्सों के ताले तोड़ डाले, अलमारी को चाभी से खोल कर पूरा उठक–पटक डाला. गहना, पैसा जो था सब लेकर चली गयीं. उस वक़्त शुभ्रा भाभी यहां नहीं थी.) उसके आंखों में दहशत अब भी बरकरार थी. सोचकर ही मैं हैरान हो उठा.

पर रक्त मांस के रिश्तों का यह क्या दृश्य!!! कोई इंसान ऐसा सोच भी कैसे सकता है? करना तो ख़ैर बहुत... मन तरस आया.

प्रश्न था, 'क्या बेटियां भी...'

दूसरे दिन बेटियों ने काकी मां की आत्मा की शांति के लिए पुरोहित बुलवाया, भंडारा करवाया. बेटे ने भी विधिवत श्राद्ध कर्म करवाया!

मुझे स्मरण आ रहा था वे कभी बोली थीं, 'देखिश आमी मोरे गेले उस सब एक होए जाबे!' (देखना मेरी मृत्यु के बाद सब एक हो जायेंगे) शायद वही दृश्य आंखों के सामने दिख भी रहा था. श्राद्ध कर्म ख़त्म होने के सप्ताह दिन बाद, संभवत: आपसी बंटबारे पर सहमति बन चुकी थी.

'भांगा मेला' (उजड़ते हुए मेले का दृश्य जहां दुकान दौरी टूट रहे हों.) का सा दृश्य. जिस घर में काकू-काकी मां ने अपनी ज़िंदगी बितायी, उसी घर से आज सामान खाली किया जा रहा था. खाली पड़ा घर नग्न एवं कुरूप-सा दिखने लगा था. कोई पलंग खोल कर रख रहा था तो किसी ने स्टील आलमिरा अपने लिए सहेजी तो किसी को सेंटर टेबल हाथ लगी. टी. वी., कुर्सी, साइकिल और न जाने क्या-क्या वहां पड़ा हुआ था. सभी आपसी सहमति पर अपनी ज़रूरत के अनुसार समान ढोते रहे. आज के दिन विशेष रूप से एक कबाड़ी वाले को भी बुलाया गया था.

कबाड़ी वाला अपनी ज़रूरत के अनुसार रद्दी हुए अख़बारों से काम लायक समान छांट रहा था. पर काकू-काकी का फ्रेमिंग किया हुआ वह फ़ोटो कबाड़ी के काम का भी नहीं था अत: उसने उसे अलग, न लेने वाले सामानों के साथ रख दिया, जहां पहले से ही कुछ सामान रखा हुआ था.

पास ही अरिंदम दा की बेटी खेल रही थी. खेलते-खेलते उसकी नज़र अब उस फ़ोटो पर पड़ी तो अपने नन्हें हाथों से उसे सहेजते हुए बोली, 'एटा आमार ठाम्मा आर दादूर छोबी. एटा आमी राखबो!' (यह मेरे दादा-दादी की तस्वीर है. इसे मैं रखूंगी.) मुझे पहली बार लगा, रिश्तों के ठूंठ हुए बिरवे से कोपलें फिर से फूट रही हों!!! काकू-काकी का वह फ्रेमिंग किया हुआ फ़ोटो मानो मुस्कुरा रहा हो. मेरी आंखें भर आयीं.

📫 १७ /३८, ऐडिसन रोड,
दुर्गापुर (प.बंगाल)-७१३२०१५
मो.-९४७५३७९५३३.
ई-मेल : subhash41773@gmail.com

लघुकथा

मां का संकेत

✍ राधेश्याम पाठक 'उत्तम'

वह आत्मघाती बम था. भीड़ भरे इलाके में स्वयं को उड़ाने आया था. वह भीड़ में घुसने वाला ही था, उसके मोबाइल की घंटी बजी. उसकी मां उससे कह रही थी — ''बेटा, परांठे खा लेना, फिर ही कुछ करना.''

उसे लगा उसके पेट में चूहे दौड़ रहे हैं. सोचा पहले चूहों को शांत कर लूं. वह वहीं सुरक्षित जगह खोजकर बैठ गया और अपनी मां के हाथ के परांठे खाने लगा. मां की ममता के साथ बने परांठों ने उसमें जीने की इच्छा जागृत कर दी. मां के संकेत को वह समझ गया. वह उठा, उसने अपनी कमर से बारूद से भरी बेल्ट निकाली और उसे नष्ट करने के लिए एक ओर दौड़ लगा दी.

📫 एल. आय. जी., द्वितीय १४,
औंदुबर भवन, सांदीपनि नगर, उज्जैन (म. प्र.).
मो. : ९८२६८१६६१९

आमने-सामने

'अकेलेपन का दर्द मेरे डी.एन.ए में है'

✍ डॉ. राजम पिल्लै

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती और नीतू सुदीप्ति 'नित्या' से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है राजम पिल्लै की आत्मरचना.

'मैं पटरियों की तरह ज़मीं पर पड़ा रहा
सीने से ग़म गुज़रते रहे रेल की तरह.'

-मनुव्वर राना

२१ अक्तूबर १९४३ को, आधी रात के वक़्त पंचवटी, नासिक, महाराष्ट्र में मेरा जन्म हुआ. (ऐसा मां ने बताया.)

दशकों बाद, छायाशास्त्रियों, कौड़ी-ज्ञानियों, न्यूमरोलॉज़िस्टों ने, माथे पर सलवटें डाल पूछा, ''आधी रात याने? २० की आधी रात, २१ की आधी रात, कौन-सी? न्यूमरोलॉज़ी के मुताबिक़ आपका मूल नंबर तय करना पड़ेगा ना? २२ याने २+२ = ४ होगा; २१ याने २ + १ =३ होगा और २० याने २ +०=२ होगा! न्यूमरोलॉज़ी साइंस है, यहां प्रिसाइस होना पड़ता है!''

गणेश-कृपा प्राप्त ज्योतिषी बेजान दारूवाला से लेकर प्राचीन कीरो तक की क़िताबों ने संदेह प्रकट किया - ''लिबरा'' या ''स्कोर्पियो''?

ताड़-पत्र पर अंकित कुंडली वेत्ताओं, भृगु-संहिता वाले ज्योतिर्विदों ने तर्जनी दिखा-दिखाकर चेतावनी दी, ''ज्योतिष एक शास्त्र है, वेद-पुरुष का नेत्र है. जातक की कुंडली के प्रत्येक घर की, घर में बैठे ग्रहों की, ग्रहों की दृष्टि की गणना करनी पड़ती है! पता नहीं आपको? शनि की दृष्टि से, शनि-दशा में एक सामान्य-से पुरोहित की कन्या रातों-रात राजरानी बन गयी और उसी शनि ने जाते-जाते ऐसा पदाघात किया कि वह रानी निस्संतान रही, विधवा हुई, अपने प्राप्य अधिकारों के लिए क़ानून और शास्त्र की सहायता से जूझती रही और अंत में अपने प्रदेश से बाहर, जन्म-स्थान से बाहर, अकाल-मृत्यु का ग्रास बनी! और आपकी समस्या तो विकट है! उन्नीस सौ तैंतालीस! याने 'वार-टाइम' ! सेकंड वर्ल्ड वार! हिंदुस्तान भी शामिल था वार में; हमारे मालिकान इंग्लैंड ने हमारी फ़ौजों को भी भेजा था इंग्लैंड-फ्रांस-जर्मनी के मोर्चों पर. उस समय दुनिया-भर की घड़ियों का टाइम बदला गया था, ग्रीनविच टाइम से एडज़स्ट करने के लिए. आपके मां-बाप पढ़े-लिखे हैं ना,

उन्हीं से पूछिए सही जन्म-समय, जन्म स्थान.''

मेरी हालत चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' के नायक लहना सिंह की तरह हो गयी. वार-टाइम कहानी है, वह भी. सिख रेज़िमेंट का फ्रांस के मोर्चे पर वीर-गति पाने वाला लहना सिंह! उसने तो प्रेम के मोर्चे पर भी वीर-गति पायी थी! मां-बाप मेरे पढ़े-लिखे ही नहीं, बहुत ही ज़्यादा, विविध प्रगतिशील, उदार, उदात्त विषयों के जानकार थे. शेल्फ़ पर ब्राऊन कवर चढ़ी हुई हिंदी-इंग्लिश-तमिल क़िताबों की दर्शनीय क़तारें थीं. पं. नेहरू का 'विश्व इतिहास की झलक', 'मेरी कहानी', कार्ल मार्क्स का 'दास कैपिटल', 'मेनिफ़ेस्टो ऑफ़ कम्युनिस्ट पार्टी', चार्ल्स डिकेंस का 'पिकविक पेपर्स', सुब्रहमण्य भारती की कविताओं के संग्रह सभी प्रकार की पुस्तकें बग़ैर किसी झगड़े के वहां होती थीं, पढ़ी जाती थीं, हल्की-सी चर्चा भी होती थी! रेडियो पर सिर्फ़ न्यूज़ आती थी; पं. नेहरू का तीन बार घोषित 'जय हिंद' आता था, मास्को रेडियो से हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय का 'सूर्य अस्त हो गया/गगन मस्त हो गया' आता था! घर पर, दो कमरे-रसोईघर वाले फ़्लैट में केरल के पूर्वमुख्यमंत्री कॉमरेड ई. एम. एस. नंबूद्रीपाद रहने आते थे, तमिलनाडु के करोड़पति उद्योगपति रेड्डियार बंधु आते थे. परेल के कामगार मैदान में कॉमरेड डांगे, शंकर शैलेंद्र को सुनने के लिए बड़ी मुस्तैदी से जाया जाता था. सचमुच ही पढ़ा-लिखा घर था! सतेज, सतर्क, नागरिक-अधिकारों और कर्तव्यों को मानने और जूझनेवाला गृहपति और उसका परिवार छोटा-सा! पत्नी और एक बेटी — एकलौती! मुझे यह पढ़ने की भी ज़रूरत नहीं थी कि कार्ल मार्क्स ने दुनिया भर के मज़दूरों को यह आह्वान दिया है: 'दुनिया-भर के मज़दूरों! एकजुट हो जाओ! तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ नहीं है — सिवाय अपनी ज़ंजीरों के!'

हमारा पहला कमरा तीन दीवारोंवाला था और एक दीवार पर गांधीजी की फ्रेम-मढ़ी बड़ी तस्वीर लगी थी — एक हाथ में 'हरिजन' अख़बार, घुटनों तक की धोती, लटकती हुई कमर-घड़ी, एक बुजुर्ग का शांत, सौम्य मुस्कराहट वाला चेहरा और आगे बढ़ते हुए क़दम. उन्होंने तो 'सत्य के प्रयोग' किये थे, हमारे यहां सत्य के सिवाय और किसी का भी प्रयोग वर्जित था. मज़ाक में भी नहीं!

और एक दिन, नहीं-नहीं, एक रात को गुलेल के एक कंकड़ ने सारा झाड़-फानूस चकनाचूर कर दिया. कितने-कितने झूठ, उससे भी ख़तरनाक कितने-कितने अर्धसत्य!! गांधीजी ने तो अपनी 'पहाड़ जैसी भूल' क़बूल भी की थी, क्या मेरे मां-बाप करेंगे?

मेरा अनुशासनबद्ध, भाषण-मंचों पर तालियां बटोरनेवाला स्वर फट पड़ा. मां से ही जवाब-तलब करना था, सफ़ाई मांगनी थी. पिताजी तो हमेशा सुप्रीम कोर्ट से परे की सत्ता थे, और इस समय तो बिस्तर पर पड़े थे हाथ-पांव, मुंह सब से लाचार!

''आप लोगों ने मुझे सच क्यों नहीं बताया? सारी दुनिया जिस बात को जानती थी, वह मुझे नहीं मालूम थी! मैं आठवीं से एम. ए. तक मेरिट-लिस्टेड, स्कॉलरशिप होल्डर; यूथ फेस्टिवल में बांबे युनिवर्सिटी की रिप्रेज़ेंटेटिव! प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने गर्मजोशी से हाथ मिलाया था मुझसे! और आपने मेरी शादी कर दी तमिलनाडु के कन्याकुमारी जिले के गंवई-गांव के एक लड़के से! ग्यारहवीं फ़ेल, सिर्फ़ घरेलू तमिल जाननेवाले से! यह कहकर कि वह सुशील है, अच्छे परिवार का है, हमारी जाति-बिरादरी का है! आप लोगों ने यह क्यों नहीं बताया कि आप लोग कन्याकुमारी के वेल्लाल पिल्लै जाति की बिरादरी से बहिष्कृत लोग थे! उन्नीस सौ उन्तालीस-चालीस में नागरकोइल शहर में आप दोनों के प्रेम-प्रसंग चर्चा के विषय थे! आप दोनों भाग आये थे वहां से!! आपने जो मेरी जन्म-तारीख़, जन्म स्थान बताया है, कहीं वह भी तो झूठ नहीं है! शायद इसीलिए कोई ज्योतिषी मेरा भविष्य...!''

मां ने टोक दिया. उनके चेहरे, आंख कहीं कोई अफ़सोस नहीं था, शर्मिंदगी नहीं थी!

''तेरा भविष्य बिगड़ने नहीं देना था, इसलिए सच नहीं बताया! तुम्हें मेरिट-लिस्ट तक मैंने पहुंचाया था! तुम्हें यूथ फ़ेस्टिवल जाने लायक मैंने बनाया था. तुम्हें म्युनिसिपल स्कूल के गुरूजी, हाईस्कूल की बहनजी और कॉलेज़ के प्रोफ़ेसरों को मैंने सौंपा था! तुम्हारी प्रतिभा से वे सब प्रभावित थे और उसे सही मार्ग पर ले जाने के लिए उन्होंने और मैंने मिलकर मेहनत की थी! और रही बात शादी की... मैं जानती थी तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए वर ढूंढ़ने नहीं जायेंगे. वे एम. एस. सुब्बलक्ष्मी के कंसर्ट के लिए टिकट बेचने घर-घर जा सकते थे, अपने कॉमरेड दोस्तों के स्कूल के लिए चंदे की बहियां लेकर घूम सकते थे लेकिन तुम्हारे लिए वर ढूंढ़ने समाज के सामने, लड़की के बाप की तरह

डॉ. राजम पिल्लै की कविताएं

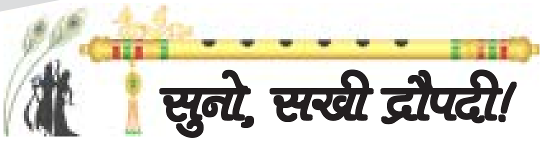

सुनो, सखी द्रौपदी!

तुम में ज्वलंत अग्नि को
मैंने छुआ है, द्रौपदी!
नहीं थीं तुम किसी की औरस संतान,
तभी कुल-गोत्र-नाम
कुछ भी न था तुम्हारा!
यज्ञ-कुंड के आस-पास पायी गयी,
सो याज्ञसेनी
राजा द्रुपद की पोषिता कन्या,
सो द्रौपदी
पांचाल देश में पली-बढ़ी
सो पांचाली!
स्वयंभू तुम, किसी की
कुछ नहीं थीं द्रौपदी!
मैं देख सकती हूं, उन समिधाओं को,
जो निरंतर एक ज्वाला,
जगाये रखती थीं तुम में!
क्या अपने अंधेरे
रक्तरंजित, लांछनायुक्त
भविष्य की ओर
तुम्हारे क़दम स्वयं ही तुम्हें ले
जा रहे थे?
क्यों स्वयंवर-सभा में तमककर
कहा तुमने
“मैं सूतपुत्र का वरण नहीं
करूंगी!”
संभवतः अधिक सौभाग्यवती
होतीं
तुम उस के साथ!
पांच भाइयों में भिक्षान्न की तरह
न बंटती तुम!
व्यसनी पति के हाथों
जुए में हारी न जातीं
भरे दरबार में
वार-वनिता न कहलातीं,
निर्वस्त्र न की जातीं!
सुनो, सखी द्रौपदी,
तेजस्विता सदैव
वंदनीय नहीं होती
और स्त्री में तो
वह नितांत अवांछनीय
और सो
दंडनीय होती है!
हिम-मृत्यु ही
दी जाती है
अग्नि-पुत्री को!

नाभि-नाल

मां! नाभि-नाल कट गयी,
रिश्ता नहीं कटा, दर्द नहीं घटा!
मां, अमृत-कुंभ नाभि में ही होता है,
वही छितरता है, सूखता है,
तिरस्कार, प्रवंचना, प्रताड़ना से!
सदियों की थकान तन-मन में,
नकारते-नकारते तुम्हें बार-बार!
पीठ फेर ली तुम से, पर
मनका-मनका टूट रहा,
गुनाहों के बोझ से!
मैं तुम्हारी ताक़त, मैं तुम्हारी कमज़ोरी,
कितनी परवशता, कितनी शरणागति,
कैसी-कैसी चुनौतियां, संधियां,
प्रमाण-पत्र वैधता का पाने के लिए,
कैसे-कैसे सौदे समाज से!
जीवन-बीमा की ये किश्तें
बिला नागा चुकायीं जो तुमने
क्या सुरक्षा मिली तुम्हें?
जीवन-संध्या के अकेले पलों में
क्या मिली निजात तुम्हें डर से?
मां चिलक उठती है, वहीं
महीनों मिलती रहीं, जहां से,
तुम्हारी आशा, आशंका, प्रीति-भीति
रसायन दौड़ता है कोश-कोश में
तुम्हारा ही दिया हुआ!
मां, काटना चाहा है अपने को
तुम से कई तरह से, दशकों से
ईजाद नहीं हुआ,
ऐसा कोई धारदार अस्त्र,
नाभि-नाल को काट दे और
मां-बच्चे के रिश्ते का ख़ात्मा कर दे!
मां! नाभि-नाल कट गयी,
अवशता नहीं घटी!!

सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर नहीं जा सकते थे. हां, मैंने ही तुम्हारे लिए पति तय किया क्योंकि हमारी बिरादरी में तुम्हारे ससुर ही एकमात्र ऐसे हमारे हितैषी थे, जिन्होंने हमें लगातार मदद की, तुम्हारे शब्दों में 'भागने' में भी! तुम्हारे चाचा लोग, सरकारी कर्मचारी थे; गांधीजी के पीछे पागल होकर 'स्वराज' के लिए नारे लगानेवाले, कंधे पर खादी का गट्ठर लेकर घर-घर बेचने की कोशिश करनेवाले, हरिजन-सेवा संघ में शामिल होकर जाति-धर्म के भेद-भाव के बग़ैर खाना खानेवाले छोटे भाई के लिए उनके दरवाज़े बंद थे. तुम्हारी बुआओं के कोठारों में धान की बोरियां, नारियल के ढेर जमा रहते थे, पर तुम्हारे पिताजी को एक बार का खाना खिलाना भी उन्हें बोझ लगता था! तुम्हारे ससुर मेरी भावनाओं की, मेरी कर्मठता की क़द्र करते थे. सुनो, तुम मेरिटेड स्टुडेंट यों ही नहीं बन गयी हो. मेरी मां मेरे लिए चार आने की फ़ीस नहीं जुटा पाती थी, हम मलबारवाले हैं. रस्सी बांटकर, आधे पेट मांड पीकर मैंने पढ़ाई की है. कन्याकुमारी ज़िले से मैं एकमात्र युवती थी जिसने मद्रास जाकर दक्षिण भारत हिंदुस्तानी प्रचार-सभा से हिंदी विशारद पास की थी, उर्दू सीखी थी, प्रेमचंद पढ़ा था; वापस लौटकर नागरकोइल शहर में 'कमला नेहरू विद्यालय' चलाया था. बड़े-बड़े घरों की लड़कियां मुझसे हिंदी सीखती थीं, उनके पिता हाईकोर्ट में मुंसिफ़ होते थे और 'राष्ट्रभाषा' हिंदी सीखना आज़ादी की लड़ाई का ही एक हिस्सा है, यह जानते थे और जान-बूझकर अनजान बन जाते थे! तुम्हें प्रतिभा, कर्मठता, उत्तराधिकार में मिली है...''

मां की आंखों में चमक थी, चेहरे पर दर्प था, अपने क़दमों को 'पहाड़-सी भूल' मानना तो दूर रहा वे तो राई पर भी पछता रही नहीं थीं!! उनकी आंखों में उस दिन मेरे लिए आंसू नहीं थे, मेरी आंखों में उनके लिए आंसू हमेशा के लिए सूख गये!

बस, अमीर आगा क़ज़लबाश का एक शेर ही मेरे दिमाग़ में सुनार ही हथौड़ी की तरह 'ठक' 'ठक' बजता रहा.

'गिरते हुए मकां से तू बाहर निकल के आ,
इस वक़्त ये न पूछ मैमार कौन था?''

डायवोर्स के लिए कोर्ट में अर्ज़ी दी. ज़िंदगी में भूचाल आ गया. पांव तले की ज़मीन पर दरारें पड़ गयीं. कॉलेज़ की सात साल की नौकरी जाते-जाते बची. सिवाय मित्रों के कोई रिश्तेदार नहीं रहा. मरणासन्न पिता, मेरे दोनों बेटों के बदन पर हाथ फिराते हुए मुझसे कोई अपील करते हुए-से लगते. उनका शेक्सपियर, उनका कार्ल मार्क्स, उनकी वाग्मिता, शेफ़र और पारकर पेन से प्रभावशाली लिपि में तमिल, अंग्रेज़ी के सैक़ड़ों पृष्ठ लिखनेवाली उन की उंगलियां लुंज-पुंज हो गयी थीं, आंखें लगभग पथराने लगी थीं.

सदाशयी महानुभावों ने कहा, ''इतने-इतने मोर्चे साथ नहीं खोलने चाहिए थे.'' पर लड़ ही कौन रहा था? तमग़े पाने की हवस थी न शहीद होने का जुनून. पर बिन मांगे ही ख़िताब मिलते गये.

मैंने क़लम की स्याही कभी सूखने नहीं दी पर वह नहीं लिखा जो लिखना चाहती थी. उन दिनों आकाशवाणी सर्व-शक्तिशाली जन-संचार माध्यम था. सैकड़ों वार्ताएं लिखीं, भेंट-वार्ताएं प्रस्तुत कीं. बड़े पैमाने पर तमिल, गुजराती, मराठी, इंग्लिश से हिंदी में अनुवाद किया. ख़ूब सम्मान और पुरस्कार मिला. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार... विदेश-यात्राएं कीं, राजदूतावासों में व्याख्यान दिये, सेमिनारों में उल्लेखनीय योगदान किया. यू जी सी के अनुदान से एक लघु शोध-प्रबंध 'तमिल तथा हिंदी का वैष्णव भक्ति-साहित्य' पूरा किया. यू जी सी के दो वृहत् शोध प्रबंध — 'तमिल तथा हिंदी की महिला उपन्यासकारों का रचना संसार : एक स्त्रीवादी विमर्श' और 'बीसवीं' सदी के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन' पूरे किये. कॉलेज़ में यू. जी. सी. एमरिटस फ़ैलो नियुक्त हुई, शोध प्रबंध प्रस्तुत किया 'आधुनिकता के सौ वर्ष.'

सब कुछ होता गया, लगभग एक स्लीप वाकिंग की तरह. अनेक मित्रताएं, विरल-सघन बनीं; कुछ डिस्पोज़ेबल बैटरी की तरह एक्सपायर हो गयीं; कुछ शिराओं को मारिजुआना की तरह सुन्न करती गयीं. दीदओदानिस्त: टॉक्सिक रिलेशनशिप को भी बनाये रखा; डर! अकेला पड़ जाने का डर!

'चमन दूर, आशियां बरबाद, ये टूटे हुए बाज़ू,
मिरा क्या हाल हो, सैयाद गर मुझे रिहा कर दे.'

अकेलेपन का डर मेरे डी एन ए में है, वह आदम की हव्वा, मनु की श्रद्धा और कन्याकुमारी जिले के फ्रीडम फ़ाइटर नटराजन पिल्लै की जीवन-संगिनी चेल्लम्मा देवी ने मुझे उत्तराधिकार में दिया है!

सन २०१०-२०११ के बीच मैंने कविताएं लिखनी

कविता

अख़बारों से

संतोष कुमार तिवारी

रोज़ सुबह-सुबह
अख़बारों में
आत्महत्या, हत्या की घटनाएं
बेरोज़गार युवाओं का आंदोलन
गांव से शहर तक
सदमे में छोड़ने वाली
बलात्कार की अंतहीन घटनाएं
सड़क हादसों की
हृदयविदारक तस्वीर देख
चाक-चाक होता हृदय..
आकंठ आरोपों में डूबे नेताओं द्वारा
भ्रष्टाचार के कीचड़ में धंसे
प्रतिनिधियों पर आरोप-प्रत्यारोप
सदन में हंगामा, वॉकआउट
माइक और कुर्सियों से मारामारी
क्या यही है लोकतांत्रिक सरकार की उपलब्धियां
कुछ तो नहीं बदला
जनता आज़ भी घनचक्कर बनी घूम रही.
चारों तरफ़ दगे हुए कारतूसों का खोखा है.
जनता और नेता के रिश्ते में
सौ परसेंट का धोखा है.

'अयोध्याधाम', रोड नं.४, शांतिकुंज, पो. पीरुमदारा, जि- नैनीताल- २४४७१५.
मो. : ९४५६१३७३१५

शुरू कीं. सधी निष्कंप उंगलियों और तेज़ रफ़्तार से! जैसे परीक्षा हाल में प्रेमचंद की 'निर्मला' पर कुछ लिख रही हूं, घंटी बजने को है, उत्तर-पुस्तिका मिनटों में छिन जायेगी. अभी २०१४ को उन सब का संग्रह 'उत्तराधिकार' छपा. ७२ साल की उम्र में पहला कविता-संग्रह! सन साठ के दशकों में लगा था कि कथा-कथन, 'दास्तानगोई' मेरी संवेदनाओं, संस्कारों की अभिव्यक्ति की वाहन होगी पर अभी तक मेरी क़लम की कुदाल, मेरी चेतना के उस ख़दान में खुदाई नहीं कर पायी है जहां अनेक कथाएं मिट्टी-पत्थर के बीच दबी पड़ी हैं.

पर शायद कॉस्मिक संयोगों की वजह से एक कविता हो गयी. 'गांधारी, तुम्हारा 'अपना' नाम क्या है?' यह समझने और मानने के लिए 'स्त्रीवादी विमर्श' आदि करने की कोई ज़रूरत नहीं है कि हमारे समाज में 'स्त्री' का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, यहां तक कि 'व्यक्तिवाचक' नाम भी नहीं! मैंने बड़ी पीड़ा से पूछा :

> *"वस्तुओं के नाम हैं, तुम्हारा नहीं...?*
> *... तुम सिर्फ़ एक राजनीतिक इयत्ता थीं,*
> *एक कूटनीतिक लेन-देन!*
> *वरना, तुम्हारा कोई 'अपना' नाम*
> *क्यों नहीं है गांधारी?"*

'उत्तराधिकार' की कविताएं केवल स्त्री प्रश्न को केंद्रित कर नहीं लिखी गयी हैं. जन-सामान्य की युग-युगीन शोषण-परंपरा ने मुझे बहुत उलझाया है. कविता, अपर्याप्त विधा है उन सब की अभिव्यक्ति के लिए. कहानी कहनी ही पड़ेगी! निश्चित ही बंधु डॉ. अरविंद का 'कथाबिंब' मुझे प्रेरणा और माध्यम प्रदान करेगा, ऐसा विश्वास है.

'उत्तराधिकार' का समर्पण-परिच्छेद ही मेरा मिशन-संदेश है:

> *विश्व-भर के / विगत, आगत, अनागत काल के /*
> *सूर्यधर्मी, अग्निधर्मी / सामान्य व्यक्तियों के नाम /*
> *उत्तराधिकार मिला जिन्हें / आंख पर पट्टी बांधने का /*
> *कान मूंदे रहने का / मुंह सिलने का / पर जिन्होंने /*
> *सब कुछ देखा / सब कुछ सुना और फिर /*
> *चुप्पी तोड़ने के लिए / क़लम उठा ली.*

६०१, ए रामकुंज को.हॉ.सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५०
ई-मेल : *ravindra.pillai@gmail.com*

सागर/सीपी

दुरूह जटिल लेखन कभी राह नहीं दिखाता

✍ फूलचंद मानव

(प्रो. फूलचंद मानव से डॉ. अशोक भाटिया की कथाबिंब के लिए बातचीत.)

हाल ही में साहित्य अकादमी अनुवाद पुरस्कार से तथा पंजाब के शिरोमणि साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित प्रो. फूलचंद मानव अपने अनुवाद-कार्य के जरिए पंजाबी-हिंदी के बीच आवाजाही करते रहे हैं. समय की बहती नदी के पंजाबी और हिंदी-दोनों किनारों को अनुवाद की नाव से जोड़ते रहे हैं. पंजाबी से हिंदी में अनुवाद की १९ और हिंदी से पंजाबी की १४ पुस्तकें इनके साथ जुड़ी हैं. कविता-कहानी की तीन-तीन पुस्तकों, एक यात्रा वृत्तांत के अलावा इनकी कोई एक दर्जन संपादित पुस्तकें हैं. प्राइमरी स्कूल के अध्यापक से शुरू कर लोक संपर्क अधिकारी, संपादक, प्राध्यापक, अनुवादक, कवि-कथाकार, कितना कुछ होकर भी साहित्य और संस्कृति का सहयात्री फूलचंद मानव मिलने और बातचीत में सहज-साधारण हैं. कहीं अच्छी बात की वाहवाही करता, तो कहीं ज़ोर से ठहाके मारता, ज़िंदगी को लुत्फ़ की तरह जीता प्रो. मानव दिन-भर के आयोजन - आवभगत से कहीं थका नहीं लगता. मैं काग़ज़-पेन लेकर पंजाब, पंजाबी साहित्य और अनुवाद क्रम से गहराई से जुड़े प्रो. फूलचंद मानव से सवाल शुरू करता हूं —

❖ सुरजीत पात्तर के बाद पंजाबी कविता में जो नयी पीढ़ी सक्रिय है, उनमें सवर्णजीत, लखविंदर जौहल, गुरभजन गिल आदि प्रमुख हैं. आज़ की पंजाबी कविता में देश और पंजाब कितना बोलता है?

देश या प्रांत (भाव पंजाब) आज की पंजाबी काव्य शैली में मुखरित है. बदली हुई धारा और दिशा में ऐसा दिखाई दे रहा है. कवि स्वतः स्पष्ट हो तो उसके बयान पाठक, दर्शक, श्रोता को भी अपनाने योग्य लगते हैं. धूमिल हों या दुष्यंत, पाश हों या शिव बटालवी, आज पंजाबी कविता की ऐसी अपनी भी सीमाएं हैं. इनको संभावना मान कर ही आंका जा सकता है. कविता लिखी नहीं, आज़ हगी जा रही है. तीस कवि एक जैसी कविता वैसी ही भाषा में लिख रहे हों तो आप उन्हें अलगायें कैसे? बेहतर कवि की कोई तीन पंक्तियां बोलिए, वे आपको परिचित करवायेगी, कि वो किसकी कविता है. अमितोज, पाश की तरह अमरजीत घुम्मन, नीतू अरोड़ा या नीरु असीम आज़ किसी से कम नहीं. पंजाबी कविता पर किसी एक ठेकेदार की मोहर कुछ वक़्त के लिए तो चलती है, शाश्वत नहीं हो पाती.

❖ भूमंडलीकरण के बेतरह दबाव और पंजाब से प्रवास की प्रवृत्ति को देखते हुए आने वाले वर्षों में पंजाबी की स्थिति को आप किस रूप में देखते हैं? क्या उसमें नये हालात के मुताबिक नयी शब्दावली को ग्रहण करने की प्रवृत्ति आयी है?

पंजाबी के कम ही रचनाकार युगबोध के प्रति सचेत हैं. जागृति या जागरूकता, काव्य और कवि के लिए महत्वपूर्ण शर्त है. भूमंडलीकरण या फिर प्रवास ने आर्थिक छूट और ख़ुशहाली तो दी, लेकिन आत्माभिव्यक्ति में वैसी अंतरंगता, आत्मीयता यह नहीं उभार पाये. मात्र शब्द ही नहीं, नये भावलोक की तरफ़ भी पंजाबियत कम ही सचेत है. पंजाब, पंजाबी और पंजाबियत नारों में अधिक, विचारों में कम है. कोई 'सिख' ही पंजाबी है, ये कैसे हो सकता है. क्या हिंदू रचनाकारों का योगदान और प्रभाव पंजाबी में कमतर है? हमारे चंडीगढ़ में पंजाब कला परिषद के अधीन पंजाब साहित्य अकादमी को ठेकेदारों ने पंजाबी साहित्य अकादमी बना कर रख दिया. हिंदी, उर्दू, संस्कृत या दीगर भाषाओं के लेखकों से इनके लंबरदार अपेक्षा करें कि मात्र रचनाकार ही इनसे संपर्क करेगा. ये न किसी को कभी याद करें. मात्र टी. ए., डी. ए., साधन सुविधाएं, मेल-मिलाप और सीढ़ी चढ़ने के लिए ही ये ओहदेदार बनते–बनाते हैं, और अंत में पस्त होकर रह जाते हैं.

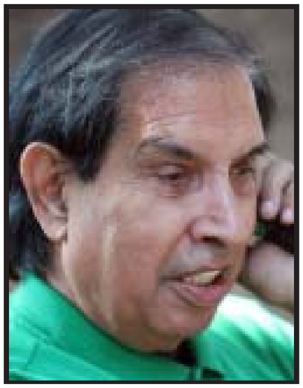

❖आपने संतोखसिंह धीर की कहानियों को ही हिंदी अनुवाद के लिए क्यों चुना? अगर प्रगतिशीलता ही कसौटी थी तो संत सिंह सेखों, सुजान सिंह और वरयाम सिंह संधू भी उतने ही प्रतिष्ठित कहानीकार हैं.

धीर की पंजाबी कहानियां पुस्तकाकार अनुवाद के लिए मुझे लॉटरी की तरह एन. बी. टी. की तरफ़ से सौंपी गयी. यह एसाइनमेंट था. इसी क्रम में करतार सिंह दुग्गल, नवतेज सिंह, महिंद्र सिंह सरना जैसे लेखकों को भी हिंदी में एन. बी. टी. ने अनुवाद करवा दिया है. इत्तफाकन, साधुवाद. मैं साहित्य अकादमी के लिए वरयाम संधू की कृति 'चौथी कूट', 'चौथी दिशा' के नाम से हिंदी में २०१० में सौंप चुका, जो प्रकाशित हो चुकी है. यह बाई चांस हुआ. प्रगतिशीलता प्रतिबद्धता नहीं, मेरे लिए रचनात्मक सुख सबसे पहले है. जगजीत बराड़ का उपन्यास १९७३ में ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किया था.

❖उसका क्या नाम था?

'धूप और दरिया'. यह मेरे द्वारा अनूदित था. इस का चुनाव और तत्परता मेरी सक्रियता सिद्ध हुई. लेखक अमेरिका में था, उनसे संपर्क कर सहमति पायी. धर्मयुग और सारिका को एक-एक प्रति पांडुलिपि की, विचारार्थ भिजवा कर तीसरी टंकित प्रति मैंने ज्ञानपीठ में जमा करायी. धर्मवीर भारती और कमलेश्वर दोनों ने ही 'धूप और दरिया' का अपनी-अपनी तरह से इस्तेमाल करने का साहस दिखाते हुए इसे पंजाबी नवलेखन की पहल बताया. लेकिन तब मैं पैसे के लिए नहीं, पंजाबी भाषा व साहित्य को हिंदी में अलग स्तर पर परिचित करवाने की भावना से काम करना चाहता था. जगदीश जी लक्ष्मी चंद्र जैन ज्ञानपीठ के तत्कालीन निदेशक, ज्ञानोदय के संपादक ने, उस दौर में जब काग़ज़ की किल्लत थी, इसे हार्ड बाउंड क्राउन साइज़ एक पन्ने पर छत्तीस पंक्तियां समाहित करते हुए प्रकाशित किया. इसका दूसरा तीसरा एडिशन आज़ भी ज्ञानपीठ में उपलब्ध है. मेरे लिए लेखन काम नहीं, मैं रचना के माध्यम से लेखन की पूजा करता हूं.

❖आपकी दृष्टि में हिंदी, पंजाबी के वैश्विक स्तर के वे कौन-से रचनाकार हैं, जिन्हें अपेक्षित महत्व नहीं मिल पाया?

देवेंद्र सत्यार्थी हिंदी पंजाबी के श्रेष्ठ रचनाकार थे, सरस्वती सम्मान और ज्ञानपीठ के भी हक़दार. इन्हें मसखरा मानकर दोनों भाषाओं में उपेक्षित किया गया और इस कारण आज़ भी हिंदी पंजाबी के अलंबरदार शर्मसार नहीं हैं. इसी तरह की एकाध साजिश हर दिशा में होती दिखायी देती है. रचना होगी तो गूंजेगी, फैलेगी, बोलेगी, बतियायेगी और समाज के अंदर उतर जायेगी. शायद इसीलिए मुक्तिबोध कहते हैं -

'जो है उससे कुछ बेहतर चाहिए
सारी दुनिया को साफ़ करने के लिए
एक मेहतर चाहिए
मेहतर जो मैं हो नहीं पाता.'

यहां कवि 'पाता' पर ज़ोर इसीलिए दे रहा है कि वह प्रयत्नरत है, कोशिश में है. न हारा है, न हारेगा. वह मुक्तिबोध है, आने वाली पीढ़ी का कवि. पराजित कवि गायेगा — मैं 'हो नहीं सकता', जबकि बड़े कवि का कथन है कि मैं हो नहीं पाता.' (कोल्ड ड्रिंक का घूंट भरकर मैं गियर बदलता हूं.)

❖अनुवाद पर आपका बहुत काम है. बाज़ारीकरण तथा उपभोक्तावाद के इस दौर में अनुवाद स्वांतः सुखाय हो या व्यावसायिक दृष्टि से धन अर्जित करने का माध्यम?

बाज़ारवाद में लेखक या अनुवादक भूखा रहे, क्या यह सहन हो पायेगा? बाइंडर, कंपोज़र, ऑपरेटर, प्रिंटर से लेकर मुद्रक, प्रकाशक तक अपना हक़ छीनते, खींचते हैं. लेखक को आटे के पेड़े के पलेथन (सूखे आटे) की तरह झाड़ दिया जाता है. वह बेचारा अनुवादक या लेखक होकर मज़ाक का पात्र बनता है. कैसी विडंबना और कैसा उपहास है! रूह, रक़्त और पसीना कलम के साथ बहता रहा है तो उसका अधिकारी रचनाकार लेखक और अनुवादक भी तो संपादक या मुद्रक प्रकाशक की तरह हक़दार होना चाहिए

कि नहीं?

स्वांतः सुखाय मेरे लिए, कि काश मैं 'ऐसा' लिख पाता या 'लिख पाऊं.' जिस स्रोत भाषा की कृति को मैंने चुना है. फोकटवाद का युग अभी बीता नहीं क्या? बाज़ार का उपयोग मुट्ठी भर लोग क्यों करें? जैसा श्रेष्ठ मैं पढ़ता हूं, पढ़ना चाह रहा हूं, उसे पंजाबी से हिंदी में रूपांतरित करके लक्ष्य भाषा को नयी इबारत देकर, मैं अन्य भारतीय भाषाओं तक भी वह सब ले जाने की चेष्टा में रहा हूं. शायद इसीलिए सात पंजाबी कृतियां, मेरे साहित्यिक अनुवाद के आधार पर, गुजराती में पुस्तकाकार छप चुकी हैं. सां. जे. पटेल अहमदाबाद के माध्यम से जो मेरे हिंदी अनुवाद के आधार पर पंजाबी सीखते-सीखते, अब सीधा पंजाबी से गुजराती में अनुवाद करने लगे हैं, बरजिंदर हमदर्द, जगतार ढाह, जगजीत बराड़, फूलचंद मानव, जसबीर भुल्लर, राम सरूप अणखी जैसे लेखकों को हिंदी माध्यम से गुजराती में अनूदित होकर छपने का गौरव प्राप्त हुआ. ठीक इसी क्रम में सां. जे. पटेल ने कवि लाभशंकर ठकार की लंबी कविता 'चीख़ कोरे काग़ज़ उत्ते' को हिंदी से पंजाबी में अनुवाद कर मेरे बठिंडा प्रवास के दौरान 'संगम' की ओर से पुस्तकाकार छपवाया था. अगर हम खोजेंगे, टटोलेंगे, तलाशेंगे तो दस कृतियां पढ़कर मुश्किल से एक, अनुवाद योग्य सिद्ध होगी. ऐसी खोज, अनुवाद की ललक मुझे जागृत करती रही है.

❖रांगेय राघव ने सारा शेक्सपीयर हिंदी में उतार दिया. विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास 'वार एंड पीस' का हिंदी अनुवाद मदनलाल मधु ने किया. लेकिन साहित्य-जगत में कितने लोग इसे जानते हैं? आपको नहीं लगता कि अनुवादक को उचित सम्मान नहीं मिला, जिसका वह हक़दार है?

आप जिनका नाम ले रहे हैं, क्या यह इनके प्रति सम्मान नहीं? हरिवंशराय बच्चन, मदनलाल मधु, भीष्म साहनी या अन्य अनेक गुमनाम से बने अनुवादक, जिस कर्मठता और साहस के साथ काम करते आ रहे हैं, उनका कार्य स्वीकार्य हुआ तो देर सवेर उन्हें महत्व दिया ही गया है. महत्व मुद्रा, राशि या अलंकरण ही नहीं, काम की स्वीकृति का भी है. यदि विश्व साहित्य में हम टॉल्सटाय, चेखव, हैमिंग्वे, हरमन हेस, तसलीमा नसरीन या अरुंधति राय जैसे नामों को पढ़ पाये हैं - इसका श्रेय भी तो रूपांतरकार को ही जायेगा.

जी हां, आज़ अनुवादक या लेखक लंबी छलांग लगाकर गति से रातोंरात शोहरत और पैसा हथियाने की फिराक में हैं. देवेंद्र सत्यार्थी या कुछ अन्य वरिष्ठतम जन लेखकों ने कभी राशि मुद्रा या नाम की चिंता नहीं की, जितना फ़िक्र अपने लिए आज़ के लिक्खाड़ कर रहे हैं. डंडीमार के रूप में लॉबी बनाकर उछलते उछालते खिद्दो (गेंद) की तरह धराशायी होकर डिप्रेशन के शिकार हो रहे हैं. क्या इससे अच्छा नहीं कि आप सहज गति से काम करते जायें. माकूल काम स्तरीय होगा तो एक दिन आपकी पहचान और पैठ उभरकर सामने आयेगी. उजाले को उभरने से कोई कब तक रोक सकेगा? कार्य वह रोशनी है, जो समाज की आंखें खोलती है और कशिश दिखाकर अपनी ओर आकर्षित करती हैं.

❖क्या आप सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद को मौलिक लेखन के बराबर मानते हैं या मौलिक लेखन जैसा कार्य मानते हैं?

अनुवाद यदि सहृदय पाठक के लिए वरेण्य है, ग्राह्य है, और उसके जीवन में दिशा प्रदान करने वाला है, तो किसी रूप में वह महत्वहीन नहीं हो सकता. हमारी बेहतर मौलिक कृतियां मानसिक स्तर पर कहीं न कहीं अनुवाद ही तो नहीं? छाया रूप में या प्रभावित होकर अंश ग्रहण करते-करते हम विस्मृति में जाकर स्मृति में जागृत हों, तो प्रभाव अपने आप निजी लेखन में आने ज़रूरी हो जाते हैं. अनुवाद और लेखन एक दूसरे का पर्याय हैं. लेकिन अपने देश में. परिवेश में यह थैंकलेस कार्य है. मसलन मज़ाक-मज़ाक में मैं अपनी सहकर्मी किसी युवा कवयित्री की एकाध कविता हिंदी में छपवाता हूं, नवभारत टाइम्स में या किसी अन्य स्तरीय पत्रिका में, तो हवा में उड़ती बेचारी कवयित्री मुझे अपनी मित्र मंडली में परिचित करवाती है — मीट माई ट्रांस्लेटर..... कवयित्री की समझ.......!'

❖सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद को आप साहित्येतर विषयों के अनुवाद से किस प्रकार भिन्न मानते हैं?

बहुपठित समाज में समाजशास्त्र, समाजविज्ञान, सामान्य ज्ञान, सूचना, संदेश और ज्ञान के आधारभूत तत्व आज बेहद ज़रूरी इसलिए हैं कि जनसामान्य का इसके बिना गुज़ारा नहीं सैकड़ों अकादमियों के नीम डॉक्टर बंदूकधारियों जैसे डायरेक्टर दिन रात अपनी सेवा में सीढ़ियां चढ़ने के

लिए लगे रहते हैं. ऐसे लोग लेखक और लेखन को नुकसान पहुंचा रहे हैं. महिला लेखिकाओं को फ़ोन करके साग्रह निमंत्रित करते हैं कि आओ तो होटल में कमरा बुक करवायेंगे. दस बारह हज़ार की अदायगी भी अकादमी करेगी, आप मंचासीन होंगी, और दूर कहीं, मुंबई जैसे शहर से वही लेखिका फ़ोन करके मुझसे पूछती है कि ये 'भड़वा डायरेक्टर' कौन है? क्या चीज़ है?' क्या साहित्य का हित इससे हो पायेगा!

साहित्यिक समाज और सामाजिक साहित्य दोनों यों साथ-साथ चलें कि छात्र समुदाय, पत्रकार वर्ग और जनसामान्य की ज़रूरतों को पूरा करे. साहित्येतर लेखन जहां हावी रहता हुआ लेखकों, अनुवादकों और संपादकों को संपन्न करता है, वहीं इस देश के यही लोग अपनी आजीविका से अपने को अच्युत मानते हुए निरीह प्राणी होकर बतियाते-गपियाते, दया के पात्र हो जाते हैं. अशोक भाई, पहले लेखक पहचान बनाकर, अपना स्थान बनाये, फिर समाज उसे जगह देगा.

❖ क्या आज़ के रचनाकार के पास मोटे तौर पर सक्रिय सामाजिक संपर्कों का अभाव है?

बिल्कुल, क्योंकि लेखक सुविधाजीवी और सुविधाभोगी रहेगा तो लेखन में भी उस स्तर की 'गंध' फैलेगी. अपने उद्देश्यों को जानने वाला लेखक समाज में बड़े और बेहतर लक्ष्यों की ओर अग्रसर होता है. हम सीढ़ी चढ़ने के लिए नहीं, चढ़ते-गिरते लोगों को देखने और उनकी अभिव्यक्ति देने के लिए लिखते हैं. डगमगाते लड़खड़ाते क़दम क्या किसी सफलता के सूचक नहीं हो सकते? बढ़ें, खड़े रहें, आगे हो पायें और होड़ में उन्हें बाईपास करके आगे निकलने के लिए कृत संकल्प हों तो कुछ भी हासिल कर सकते हैं. आज़ लेखन के नाम पर हमारे लेखक छीनते हैं या मांगते हैं. क़ीमत अदा करना नहीं चाहते. पसीना, लहू, मन, आत्मा, जल, वायु, आकाश, जब हमें उछालते हैं तो हम लेखन को महत्व देते हुए पाठक के हित में वोट क्यों नहीं दे रहे होते? अपने ही पक्ष में क्यों बने रहते हैं? दुरूह और जटिल लेखन कभी रास्ता नहीं दिखा सकता.

❖ सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद को सफलता की कसौटी पर आप कैसे परखेंगे?

मैं पाठक के रूप में पढ़ता चलूं और मुझे लगे भी नहीं कि कहीं अवरोध है. सरपट जिज्ञासा उत्कंठा, पाठ के साथ न्याय करते मेरे मन को आगे और ऊपर ले जाते क्षण मेरी पठनीयता के श्रेष्ठ बिंदु हैं. ऊब कर या डूब कर भी आप आनंद इसलिए लेते हैं कि अपनी ग्राह्य क्षमता और मानसिकता के लिए चुनौती बन रही होती है. एक बार एक ही बैठक में, लंबी कृतियां पढ़ जाने वाले कभी–कभार किसी कृति की दस बारह पन्नों की इबारत पढ़कर ऊबने लगें तो यहां मानसिकता नहीं, पाठ का प्रवाह भी महत्व रखता है, चुनौती देता है. आप स्वयं सोचें कि हम क्या और क्यों पढ़ते हैं?

❖ मुक्तिबोध ने कहा है कि अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने ही होंगे. क्या आपको नहीं लगता कि विषय के अलावा, रूप के स्तर पर पाठकों के लिहाज़ से भी आज़ विधाओं के अंतर्ग्रंथन की ज़रूरत है? जैसे काशीनाथ सिंह की कृति 'काशी का अस्सी' कथा भी है, संस्मरण भी और रेखाचित्र भी?

मुक्तिबोध ने ही कहा था — 'जो तुम्हारे लिए विष है वो मेरे लिए अन्न है.' अब यहां ज़हर या अन्न अपना-अपना है. एक लेखक ही नयी विधाओं को जन्म दे सकता है. आज़ गद्य गीत, ललित लेख, सौंदर्यशास्त्र जैसे विषयों पर कम लिखा जा रहा है. लघुकथा, कहानी, लंबी कहानी, उपन्यासिका एक जैसा प्रभाव छोड़ रही है. महाकाव्यात्मक उपन्यास या दीर्घ रचनाएं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तो आयीं, पर सामाजिक चेतना जगाती हुई अच्छी कृतियां कम प्राप्त हो रही हैं. 'मुझे चांद चाहिए!' क्यों, किसलिए, कैसा चांद, कौन सा चांद? चांद न गुलाम है न बादशाह. एक कशिश, एक आकर्षण है. गुलाब-सा. एक महत्वाकांक्षा है, जिसमें डूबती समाती नायिका सर्वस्व देकर, भोगकर, गौरवान्वित होती है. आलोचक पाठक को नये मूल्यों की ओर अग्रसर होने की चुनौती देता है. मैंने नवगीत, गीत, ग़ज़ल की भीड़ में जाना चाहा, विफल रहा. कहानियों में ख़ुद को सफल मानकर भी शायद चल नहीं पाया. सितंबर १३, १९७० के धर्मयुग में पहली कहानी भारती जी ने छापी तो मैं संतुष्ट, तृप्त अनुभव कर रहा था. लेकिन अकेला कथा संग्रह 'अंजीर' तीन भाषाओं में उपलब्ध है. मैं इसे उपलब्धि मानता हूं और आज़ भी यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण और डायरी मेरे लिए एक सिक्के के तीन पहलू नहीं, एक ही मंच से मुखरित धाराएं हैं जो मुझे पाठक से जोड़ती हैं. यात्रा से बड़ा कोई अनुभव नहीं. डायरी से बढ़कर सत्य आप कहां लिखेंगे? स्मृतियां हैं तो संस्मरण उभरेंगे ही. यह मात्र मन की प्रतिछवि नहीं, विधाओं का

गुत्थमगुत्था होना है. २०१५ में आप विधाओं को क़ैद करना चाहते हैं! इन्हें खुलने दो, पतंगों की तरह. ये नये अर्थ, नये विमर्श, और नयी चुनौतियां लेकर आलोचकों के लिए आती हैं. पाठक और संपादक के लिए भी दिशा सूचक हैं. यह अलग बात है कि बेचारा संपादक इन सब में अकेला कैसे रम पायेगा. इनकी बुलंदी, विधाओं का खुला चेहरा और बहुमुखी व्यक्तित्व ख़ुद बोल रहा है — 'गालिब छुटी शराब', 'काशी का अस्सी' या ऐसी अन्य कृतियों में भी.

❖ **कहते हैं कि अनुवाद एक ऐसी औरत है जो सुंदर है तो वफ़ादार नहीं. अगर वफ़ादार है तो सुंदर नहीं. भाव और शब्दों के इस द्वंद्व के बारे आपका क्या विचार है?**

अपने-अपने समय में ऐसी कहावतें बनती-बिगड़ती हैं. न जाने किन परिस्थितियों में अनुवाद पर यह तोहमत लगायी गयी होगी. आज़ अनुवाद सुंदर भी है और वफ़ादार भी. वस्तु, कला, शैली, शिल्प और मुहावरे पर निर्भर करता है कि कौन इसको कैसा ट्रीटमैंट दे रहा है. अगर स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में साथ-साथ वफ़ा निभायेंगे तो भला अनुवाद बेवफ़ाई क्यों करेगा? कविता के संदर्भ में अनुवाद इत्र की वह शीशी भी नहीं, जिसे खोलते ही उसकी सुगंध उड़ जाती है और शेष कुछ नहीं बचता. जो बचता है और जो बचना चाहिए वही अनुवाद है.

आप देखें परखें कि जिन लोगों ने साधना में तपकर अनुवाद किया है, उन्हीं से जानेंगे कि वफ़ा साथ रहती है और इत्र की गंध भी आसपास बनी रहती है. हां, एक बात और. एक मित्र को जानता हूं जो क़िताब खोलकर टैक्स्ट को पहले पढ़ते तक नहीं. टाइपराइटर सामने रखकर स्रोत का सीधा अनुवाद करने पर लग जाते हैं और हांफते हुए ११-१११ पन्ने टाइप करके उठते हैं. उसमें बेवफ़ाई भी मिलेगी और वहां गंध भी ग़ैरहाज़िर हो सकती है.

❖ **अपनी अनुवाद प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश डालिए. अनुवाद में आपको क्या-क्या व्यावहारिक दिक्कतें आयीं? ख़ासतौर पर जब मूल भाषा और लक्ष्य भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बिल्कुल भिन्न हो.**

जब मुझे कोई असाइनमैंट मिलता है या किसी इदारे द्वारा पूछा जाता है कि क्या आप इस कृति का अनुवाद करना चाहेंगे, तो मैं तत्काल हां न करके, उसे निवेदन करता हूं कि क़िताब मिल जाये तो पढ़ूंगा. यदि लगेगा कि अनुवाद कर सकता हूं या मेरे द्वारा यह कार्य समय पर संपन्न हो सकता है, तो उसे सहज स्वीकार करूंगा. दूसरी पायदान पर निवेदन यह है कि मैं कविता, कहानी, उपन्यास या नाटक को पढ़कर उछलता हूं, संतुष्ट होता हूं. मेरे मन और आंखों में चंचलता आती है, तो मेरा मन चाहता है कि इसे मैं अपनी भाषा में अनुवाद कर पाठकों तक पहुंचाऊं. वह हिंदी भी हो सकती है. मैंने अनचाहा काम कभी किया नहीं. हालांकि कई बार तनाव, उपालंभ, दबाव झेलने पड़े हैं, लेकिन एक चुप सौ सुख. एक बार नकार देने से कोई मेरा क्या बिगाड़ लेगा?

एक व्यक्ति, वह मानव है या कोई और रचनाकार, जो ख़ुद लिखता है, उसे अपनी ज़मीन का एहसास है और वह पत्रिकाओं, संस्थानों द्वारा स्वीकार्य है. उसे या तो अनुवाद जैसे कार्य में पड़ने की ज़रूरत नहीं, और है भी तो.... यूं १९७०-७१ में डॉ. जगजीत बराड़ का पंजाबी उपन्यास 'धूप और दरिया' पढ़ा था तो लगा कि इस कृति के साथ मेरा नाम जुड़ना चाहिए. काश मैं ऐसा लिख पाता! तभी मैंने डॉ. जगजीत बराड़ से अमेरिका में पत्र लिखकर, जहां वे इकोनॉमिक्स के प्रोफ़ेसर थे, सहमति, बायोडाटा, चित्र आदि मंगवाया. अनुवाद करके दो-तीन जगह पांडुलिपि को भेजा, जिनकी सार्थकता मैं पहचानता था. इसे तीनों संपादकों, निदेशकों ने स्वीकार किया. इसका प्रकाशन मैंने भारतीय ज्ञानपीठ से करवाया.

❖ **मानव जी, हाल ही में आपने और आपकी पत्नी योगेश्वर कौर ने मिलकर डॉ. सुतिंदर नूर द्वारा सपांदित ७३६ पृष्ठों के पंजाबी काव्य-ग्रंथ 'बीसवीं सदी का पंजाबी काव्य' का हिंदी अनुवाद किया है. बैंत हो या कि कोई दूसरा छंद, छंदबद्ध कविता का अनुवाद हमेशा कठिन होता है. मात्राएं, अर्थ, ध्वन्यात्मकता, लय, सबको साधना होता है. तो पंजाबी कविता को लक्ष्य भाषा में ले जाने के लिए आपको कौन सी दिक्कतें आयीं और उनसे कैसे पार पाया?**

भाटिया जी, मेरी अपनी शुरूआती कविताएं छंदबद्ध थीं, चाहे वह गीत हो, ग़ज़ल या भजन हों. मात्राओं पर खरे उतरने वाले गीतों और कविताओं से मेरा वास्ता पड़ता रहा है. गाते हुए मात्राएं साथ देती हैं —

उदों वारिस शाह नूं वंडया सी
हुण शिव कुमार दी वारी ए,

ओह जखम तुहानूं भुल वी गये
नवयां दी जो होर तयारी ए.

सुरजीत पात्तर ने यह गीत आतंकवाद के दौर में लिखा था, जिसका अनुवाद मैंने 'धर्मयुग' में भेजा. धर्मवीर भारती ने इसे तुरंत छाप दिया था. लयात्मक कविता के साथ लयात्मक सलूक करना होगा. देखना होगा कि अनुवादक रूपांतरण कर रहा है, कायांतरण कर रहा है या कि पुनर्सृजन? मैं अपने अनुवाद को पुनर्सृजन कहता हूं. दिक्कत आंचलिक शब्दावली या सरायकी-मुलतानी आदि के मुहावरे की आती है. उसे समझ न पाऊं तो उस आदमी के पास जाकर भावात्मक अनुवाद करने की चेष्टा करता हूं. जैसे मनमोहन सहगल ने गोष्ठी में सवाल उठाये थे कि अनुवादक को भावात्मक अनुवाद करने की छूट प्रायः नहीं दी जाती. उससे अपेक्षा की जाती है कि वह मक्खी पर मक्खी मारे. मेरे किये को संशोधन करने वाला यदि उच्च स्तर का है तो मेरे अनुवाद के साथ न्याय करेगा वरना.... भावों की गहराई तक जाने का मेरा ५२ सालों का अनुभव इस ग्रंथ के अनुवाद में काम करता रहा, इसीलिए मैं इसके साथ आगे चल पाया हूं. एक और कवि सरदार पंछी का अनुवाद भी 'धर्मयुग' में छपा था.

❖ आपको इस ग्रंथ में शामिल २०५ कवियों में अनुवाद के लिहाज़ से सबसे कठिन कवि कौन से लगे?

कठिन कुछ नहीं होता, पर जब कविता ऊलजलूल हो जाती हो... संपादक मोहपाश में बंधा किसी कवि को शामिल कर लेता हो जैसे सुरजीत हांस को किया. कविता पल्ले ही नहीं पड़ती. वह कविता ही नहीं है. इस बारे में मैंने अकादमी को लिखा भी है. इसमें एक जगह रानी नगेंद्र कहती है कि 'मर्द मूंज की चारपाई बुनते हैं. बीच में जो खाली जगह आ जाती है, वहां वे अपना लिंग फंसाते हैं.' मैं इसे हटाना चाहता था, पर अधिकारियों ने कहा कि आपको सिर्फ़ अनुवाद करना है. इसी तरह पांच-सात-दस कविताएं और भी बेसिर-पैर की हैं. संपादक ने मेहनत नहीं की, वरना वह गहरे अर्थ वाली और सरल कविताएं ही लेता. लेकिन इसमें कई मेज़र कवि छूट गये हैं जैसे किरपा सागर, जो प्रो. पूरन सिंह के बाद और बाबा बलवंत से पहले का महत्वपूर्ण कवि है. इसी तरह ग़ज़ल और कविता में जगजीत बराड़ का नाम है. कभी 'धर्मयुग' ने उसकी एक साथ दस कविताएं छापी थीं. लेकिन इसमें उसकी एक भी रचना नहीं है.

❖ आप युवा अनुवादकों को क्या संदेश देना चाहेंगे?

अनुवादक हो या लेखक, उन्हें 'पाठ' की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए. जब हम ६०० पृष्ठ पढ़ नहीं डालेंगे, तो हो सकता है हमें मुश्किल से ६ पृष्ठ का मैटर इस योग्य मिल पाये, जिसे हम अनुवाद करना चाहेंगे. पढ़ने की प्रक्रिया में से गुज़रकर ही अध्येता अनुवादक और पाठक का ज्ञान जागृत होता है. वह निर्णय की स्थिति में आ सकता है कि उसे किस दिशा में जाना है. लोग नाम छपवाने के लिए, पैसा पाने के लिए, या किसी न किसी से जुड़ने के लिए अनुवाद का जुगाड़ करना चाहते हैं. वे निष्णात बन रहे हैं या उन्हें स्वीकार किया जा रहा है, यह मार्किट ही बतायेगा क्योंकि हम बाज़ार में खड़े हैं.

युवा लेखक हैं या अनुवादक — वे शब्दकोश से अर्थ प्राप्त नहीं कर सकते. व्यवहार, अध्ययन, संपर्क और अनुभव उन्हें जिस छोर तक ले जायेगा, वहां उनकी डिक्शनरियां बहुत पीछे छूट जायेंगी. जिस शब्द को मैं अपने अर्थों में ढालने के लिए पहचान रहा होता हूं, वह शब्द ही कोष में नहीं होता. जैसे पंजाबी का एक शब्द है - निग्घ.

❖ इस शब्द का प्रयोग आपने 'मोहाली से मेलबर्न' पुस्तक में भी किया है.

हां, अंग्रेजी वाले इसे 'वार्म्थ' कह सकते हैं. 'सुलगता' या 'गर्म हो रहा' ग़लत है. वह अंगीठी तो है नहीं. निग्घ का पर्याय आत्मीयता के आसपास कहीं बनेगा. यह व्यवहार की भाषा से आयेगा.

✍ २३९, दशमेश एनक्लेव
ढकौली - १६०१०४
ज़ीरकपुर (चंडीगढ़)
मो.: ९३१६००१५४९

डॉ. अशोक भाटिया
१८८२, सेक्टर-१३
अर्बन इस्टेट, करनाल-१३२००१
मोः ९४१६१५२१००
ashokbhatihes@gmail.com

बाइस्कोप

एक सीधी-सादी शख़्सियत : शफ़ीक़ अहमद

✍ सविता बजाज

मैं जब दिल्ली में थी तो वहां आये दिन बड़े-बड़े मुशायरों में जाती, कवि सम्मेलनों में शरीक़ होती. गोष्ठियां होतीं, संगीत के प्रोग्राम होते जहां बड़े-बड़े गायक, गायिकाएं आतीं, वह ज़माना ही अलग था. मैं कला की पुजारिन बावरी, दीवानी स्टेज़ पर गाती भी थी, पुरानी फ़िल्मों के गाने. लेखक, दूर से ही लेखक लगता. कांधे पर झोला, मुंह में पान की गिलौरी, पैरों में सादी खादी भंडार की चप्पलें और सादा सा कुर्त्ता पाजामा.

महफ़िलों में फूलों की ख़ुशबू छायी रहती और माहौल बहुत ही ख़ुशनुमा और रंगीन रहता. महफ़िल में जाती तो जी ही न करता उठने को. महफ़िलों में बड़ी-बड़ी हस्तियों से अक्सर मिलना-मिलाना होता रहता. अमृता प्रीतम, रजिंदर सिंह बेदी, ख़्वाजा अहमद अब्बास तो दिल्ली में अक्सर आते थे. उनकी लिखी क़िताबों पर चर्चा होती तो बहुत ही आर्टटिस्टिक माहौल बनता. कहने का मतलब दिल्ली कला का गढ़ था जहां हर कोई अपनी अनमोल रचनाओं का पाठ करता.

मैं जब नयी-नयी बंबई आयी तो यहां की ज़िंदगी बहुत ख़ुशनुमा थी. लेकिन देखते-देखते यहां का माहौल बदलता गया. कला की दीवानगी, चाहत, कला के दीवानेपन को पैसे रूपी समंदर ने निगलना शुरू कर दिया. रिश्तों में दरारें आने लगीं. ख़ून सफ़ेद होने लगा. स्वार्थ और मतलब का बोलबाला होने लगा. उसी माहौल में मेरी मुलाक़ात एक खरे, ईमानदार सीधे सच्चे जोशीले लेखक से हुई जो कभी फ़िल्म 'नेक्स्ट लाइट' के ज़माने में जिसमें मेरे साथ मिथुन स्मिता वग़ैरह थे, जिसके डायरेक्टर ख़्वाजा अहमद अब्बास थे और आप असिस्टेंड डायरेक्टर — जिसका नाम शफ़ीक़ अहमद था. धीमी-धीमी, सधी हुई आवाज़. मेरे क़रीब आकर कहता — मैडम, यह लाइनें प्लीज़ ऐसे बोलो न. शफ़ीक़ साहब के. ए. अब्बास का सारा लेखन का कामकाज करते थे. दिन भर टाइप करते रहते. उस ज़माने में डायरेक्टर के साथ सिर्फ़ एक ही असिस्टेंट होता था. आजकल की तरह, पचासों की शोशेबाजी नहीं थी. अब्बास साहब से मेरी अच्छी दोस्ती थी, वे मुझे दूसरी मीना कुमारी कहते. मैं अक्सर उन्हें रेडियो पर बुलाती या फिर साक्षात्कार करती. मतलब उनके घर मेरा आना–जाना बना रहता. शफ़ीक़ अब्बास जिन्होंने राजकूपर की बहुत फ़िल्में लिखी साहब के हमराज़ थे, हमेशा उनके साथ बने रहते. एक बार, कृष्ण चंदर की पत्नी सलमा सिद्दिकी की टेलीफ़िल्म 'यहां से शहर को देखो' जो उनके बेटे आर. के. मुनीर ने बनायी थी, वहां बहुत बरसों बाद मिले, फ़िल्म में मेरे साथ बड़े-बड़े एक्टर थे. मसलन रज़ा मुराद के पिता, शम्मी आंटी, लीला मिश्रा, चांद उस्मानी वग़ैरह. मैं फ़िल्म में धोबन बनी थी. शफ़ीक साहब ने बताया था कि वह सिर्फ़ लेखक ही बने रहना चाहते हैं. बहुत काम है लिखने का लेकिन डायरेक्टर कभी नहीं बनेंगे. हालांकि ऑफ़र बहुत आये. असिस्टेंट का काम दोस्ती यारी में करते हैं. शफ़ीक साहब से मुलाकात फिर 'मि. एक्स' के सेट पर हुई जिसे अब्बास साहब बना रहे थे. मेरे साथ फ़िल्म में शबाना आज़मी थी. उस दिन पूरा बंबई पानी में तैर रहा था. लेकिन हम लोग जुहू में शूटिंग कर रहे थे और शफ़ीक़ सैट पर मौज़ूद थे.

वक़्त बदला तो बहुत कुछ बदल गया. शफ़ीक साहब के बालों में सफ़ेदी आ गयी और मेरे शरीर ने भी उम्र बढ़ने की दस्तक दे दी थी. हाल ही में लेखकों के एक वर्कशॉप में शफ़ीक़ साहब से बातचीत कुछ इस तरह से हुई —

'सविता जी, मेरे बहुत से साथी मुझे छोड़ कर ऊपर चले गये, अकेला पड़ गया हूं क्या बोलूं अब. कुछ मज़ा ही नहीं रहा उनके बिना. ख़ैर इस ढलती उम्र में अपने बारे में आपको बता देता हूं.'

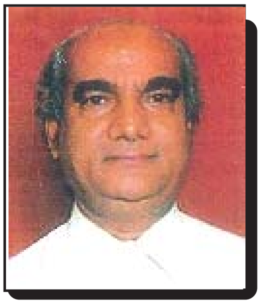

शफ़ीक़ अहमद

शफ़ीक़ साहब मुज़फ्फरनगर के रहनेवाले हैं. परिवार में कोई पढ़ा–लिखा नहीं. — 'अब्बा पेशे से दर्ज़ी थे लेकिन उन्हें थोड़ी बहुत उर्दू आती थी. वे अक़्सर ऊर्दू की 'शमा मैगज़ीन' क्विज़ भरने के लिए लाते थे जिसका सही हल होता उसे इनाम मिलता. मैं भी बस 'शमा' पढ़-पढ़ कर उर्दू सीख गया. शमा में कृष्ण चंदर की 'एक गधे की आत्मकथा' पढ़ डाली. उन्हें ख़त भी लिखा. बस पढ़ते-पढ़ते बहुत सारे लेखकों को उनके लेखन की वजह से जान गया. के. ए. अब्बास का फ़ैन था. मैं 'ब्लिट्ज़' में छपा. किसी के पास अगर मेरी पुरानी क़िताबें हों तो कृपया भेज दें. मैंने उन्हें उनकी लिखी 'ब्लिट्ज सन' भेज दी. बदले में उन्होंने मुझे अपनी लिखी तीन नयी क़िताबें भेजीं. मैं तब तक बी. ए. भी कर चुका था और नौकरी भी करता था. लेकिन मन नहीं लगता था. लिहाज़ा १९७८ में बंबई आकर अब्बास साहब से मिला और बंबई का ही होकर रह गया.

हालांकि के. ए. अब्बास जी के यहां अनवर उनका सेक्रटरी था लेकिन लिखने–पढ़ने का टाइपिंग का — इंग्लिश, हिंदी, उर्दू का सब काम मैं संभालता. उनको फ़िल्मों में असिस्ट करता, लेखन में मदद करता. एक साल उनके घर में भी रहा.

अब्बास साहब का उठना बैठना, बड़े-बड़े नामी, गुणी लोगों से था. क़ैफी आज़मी साहब से मिला तो उन्होंने अपना सेक्रेटरी बना लिया. ४००रु. वह देते और ४००रु. अब्बास साहब. सुबह का ख़ाना क़ैफी साहब के यहां खाता और रात का अब्बास जी के यहां.

घर से प्रण करके आया था कि घर वापस नहीं लौटूंगा, अच्छा लेखन करूंगा. धीरे-धीरे मेरी गाड़ी पटरी पर आ गयी. फ़िल्मों की, सीरियलों की कहानियां, लिखता, संवाद लिखता मुझे डायरेक्शन के भी ऑफ़र आये, लेकिन जो मेरा क्षेत्र नहीं, नहीं कर सकता. सबसे पहली फ़िल्म 'लव इन गोवा' मिली जिसकी कहानी मेरी थी और संवाद अब्बास साहब ने लिखे. धीरे-धीरे मेरा काम चल निकला, मैं फ़िल्में और सीरियल लिखने लगा. कुछ फ़िल्में ख़ूब चलीं. मसलन 'यह मेरी जंग है', 'फिर आयी बरसात' वग़ैरह. 'आज का खलनायक', 'मुल्ला नसरुद्दीन', जावेद अख़्तर, मुजरिम वग़ैरह सीरियल बन रहे हैं उर्दू में. चार फ़िल्मों की स्क्रिप्ट लिख रहा हूं. टाइटल तो बदलते रहते हैं बनने तक. बाक़ी उर्दू रिसालों में पहले भी छपता था, आज भी छपता हूं. हां, यह बात सच है आजकल ऊर्दू में ज़्यादा लिखता हूं, डिमांड है उर्दू की. हां बस इस उम्र में एक ही चाहत है, कोई ऐसी फ़िल्म लिखूं, कोई करिश्मा हो. फ़िल्म सबके दिल तक पहुंचे और मुझे सकून मिले.

द्वारा फ़िल्म राइटर्स एसोसिएशन,
२०१-२०२/बी-२९, ऋचा बिल्डिंग ऑफ़
न्यू लिंक रोड, लक्ष्मी एस्टेट,
अंधेरी (प.), मुंबई-४०००५३.
मो.: ९२२३२०६३५६

लघुकथा

कोबरा हार गया

राधेश्याम पाठक 'उत्तम'

कोबरा सांप ने एक मनुष्य को इस अभिमान से डस लिया कि मेरा काटा पानी भी नहीं मांगता. मनुष्य एक पल के लिए पृथ्वी पर गिरा और तुरंत उठकर खड़ा हो गया, जैसे कुछ हुआ ही नहीं.

तभी कोबरा को चक्कर आये और वह ज़मीन पर लोटने लगा. पलभर में ही उसने प्राण त्याग दिये.

यह ख़बर पवनगति से जंगल-जंगल फैल गयी. मनुष्य ने कोबरा को पछाड़ दिया है. मनुष्य विश्व का सबसे ज़हरीला प्राणी है.

कोबरा की पत्नी नागिन के भीतर जमी हुई बदले की भावना पिघलकर पानी की तरह बह गयी. भय से सिकुड़कर वह अपने बिल में समा गयी.

औदुंबर भवन, सांदीपनि नगर,
उज्जैन (म. प्र.). मो.: ९८२६८१६६१९

सुकोमल भावनाओं को समेटती सुंदर प्रेम कथा

✍ कुम्कुम् गुप्ता

ब्रह्मकमल : एक प्रेम कथा (उपन्यास) : **स्वाति तिवारी**
प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली. **मूल्य :** ३००/-

उत्तराखंड की यात्रा और धार्मिक मान्यताओं की अंतर्कथा से आगे बढ़ता उपन्यास 'ब्रह्मकमल एक प्रेम कथा' जिज्ञासा वृत्ति को बराबर बनाये रखता है. उपन्यास की नायिका अपर्णा का ब्रह्मकमल से जुड़ी यादों का बचपन का सुहाना सफ़र और उसके साथ विविध विषयों की जानकारी वातावरण की समग्रता को सहज और सुंदर सूत्र में समेटते हैं और कथा को अपने शब्दों में बुनना कथाकार स्वाति तिवारी की शैली की विशिष्टता है.

उपन्यास एक अदभुत आनंद के साथ एक यात्रा पर ले जाता है जहां पहले प्यार की अल्हड़ता, निश्चलता और प्यार प्रगट करने की अभिव्यक्ति कभी डांट-फटकार में तो कभी समझाइश में, और कभी अधिकार भाव प्रदर्शित करता अपर्णा और कमल के मन के चोरों को बड़ी सहजता से मिलाता है. उपन्यास बालमन की प्रेमकथा को एक लंबे अंतराल के बाद यात्रा के दौरान स्मृतियों के माध्यम से महसूस होता है और कमल के प्रति अपर्णा अपने मन का एक हिस्सा धड़कते हुए महसूस कराती है तब उसे अपने बालसखा से प्यार की सुखद स्मृतियां बेचैन करने लगती हैं. संपूर्ण यात्रा में अपर्णा अपने बचपन के दोस्त को खोजती रहती है. पाठक उपन्यास को पढ़ते हुए अपर्णा की अमूल्य धरोहर को खोकर स्वयं एक अलौकिक प्रेम के दर्शन करता है. एक ऐसा प्रेम जिसमें न देह का कोई अर्थ है न स्वार्थ का कोई मोल जहां अपर्णा उस अहसास के होने के बाद मानसिक विचलन की स्थिति में भटकती है वहीं पाठक पवित्र प्रेम की पराकाष्ठा को स्पर्श करने लगता है.

स्वाति तिवारी कथा को रोचकता को बनाये रखने में सफल हुई हैं. सांस्कृतिक यात्रा के साथ-साथ आप अध्यात्मिक यात्रा से भी गुज़रने लगते हैं. उत्तराखंड जैसी देवभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ वनस्पतियों की अद्भुत जानकारी, पक्षियों की प्रजातियों की रोचक जानकारी, लोककथाओं का अनूठा गुंथन लेखिका की लोक चेतना और अलौकिक प्रज्ञा की झलक दर्शाता है. साथ ही लेखिका की बहुमुखी प्रतिभा, उनकी कई विधाओं में निपुणता से मिलवाता है. स्वाति तिवारी एक स्थापित कथालेखिका के रूप में एक जाना पहचाना नाम है, यह उपन्यास स्वाति को उपन्यासकार के रूप में स्थापित करने में नीव का पत्थर साबित होगा. अपने पहले ही उपन्यास में स्वाति अपनी एक ख़ास शैली लेकर आयी हैं. उपन्यास यह प्रमाणित करता है कि कथा साहित्य में अनावश्यक दैहिक संबंधों की या विमर्श की लंबी चौड़ी व्याख्या के बग़ैर भी लोकप्रिय हो सकता है. साहित्यकार पंतजी की कर्मभूमि का स्मरण भला लगता है. उपन्यास उत्तराखंड की कई रोचक यात्राओं की ओर आकर्षित करता है जैसे सहस्त्रताल की यात्रा जहां लोकदेवताओं का ज़िक्र आता है. इसी तरह ओली की यात्रा है, अनुसुइया की यात्रा है. कहानी आगे बढ़ने के लिए स्वयं कोई नया रास्ता खोजती हुई चलती है जो कभी किसी अंतर्कथा के सहारे प्रवाहित होती है तो कभी किसी लोककथा या लोक गीत से सरस हो जाती है-कहीं-कहीं पौराणिक मिथकों से आज की वैज्ञानिक तर्कशक्ति पर एक ज्ञानवर्धक विमर्श करती चलती है, कहानी का प्रवाह यात्रा के माध्यम से सतत बना रहता है. प्रकृति अपनी ओर स्वत: आकर्षित करती है. उपन्यास के मध्य भाग यात्रा के दौरान पति-पत्नी के बीच मनोविनोद और बेटी की प्रश्नाकुलता उपन्यास की गतिशीलता को सहज बनाती है साथ ही कहीं-कहीं धार्मिक आख्यानों से पवित्र प्रेम की गाथा का साम्य बड़ा ही रोचक बन जाता है.

इस उपन्यास में वसुंधरा — प्रकृति की इतनी सजीव उपस्थिति है कि पाठक पहाड़ों की नमी का स्पर्श महसूस कर सकता है. जहां एक ओर उत्तराखंड के पहाड़ों और तीर्थ-स्थानों की प्रकृति की वर्णनात्मकता और तीर्थ-स्थानों

के प्रति आस्था और उनके परस्पर संबंधों के तार्किक विश्लेषण हैं जो कथा-प्रवाह का एक सहज हिस्सा है. इसके ठीक उलट उत्तराखंड में आये भीषण प्रलय का ऐसा भयावह और मार्मिक वर्णन है जो चित्रात्मक लगता है. इस विभीषिका के पीछे मनुष्य के छिपे लोभ और अपने हित के लिए प्रकृति को किसी भी हद तक जाकर नष्ट करने की हिंसक और लोभी प्रवृत्ति का सच उद्घाटित होता है. इसी के साथ प्रकृति और मनुष्य के अंतर्सबंधों की ज़रूरत और पीड़ा भी प्रकट होती है. प्रकृति और मनुष्य के बीच के अंतर्सबंध और उनके द्वंद्व ही लेखिका की पक्षधरता भी स्पष्ट करते हैं. इन्हीं दारुण दु:खों के बीच अपर्णा और राकेश तथा नंदिनी और कमल के संबंधों की पीड़ा का मार्मिक द्वंद्व है जो उपन्यास की लय बनाये रखता है. इन्हीं दु:खों और द्वंद्व के बीच फंसे ब्रह्म और सुनयना की आंतरिक पीड़ा और द्वंद्व है जो ज़्यादा गहरे और भीतर तक धंसे हैं.

उपन्यास की शुरुआत बद्रीनाथ यात्रा से होती है. यह यात्रा एक लंबे अंतराल की यात्रा है जहां बाल मन से प्रौढ़ा अवस्था तक की जीवन यात्रा शामिल है. यह यात्रा विस्मृति से निकल कर स्मृति की यात्रा है जहां जगह-परिवेश विस्मृत प्रेम कथा को लौटा लाते हैं स्मृतियों में. यह यात्रा पहाड़ों से मैदानों के बीच के अंतर की यात्रा है. यह हिमालय से कन्याकुमारी के बीच की यात्रा है. कहानी को बहा ले जाती या कहें कथा को प्रवाह देती अलकनंदा की यात्रा है. पढ़ते हुए लगेगा कि आप यात्रावृत्तांत पढ़ रहे हैं वहीं रोचकता इसमें बनी रहती है पर ध्यान से पढ़ने पर यह समझ में आता है कि यह कथा और उपकथाओं का गीतमय आख्यान है जिसमें धर्म भी यात्रा पर है और आस्तिकता भी. जहां आनंद भी यात्रा पर है और रोमांच भी. जहां आध्यात्म भी यात्रा पर है और सांसारिकता भी. अंतर कथाओं में कुछ पौराणिक प्रसंग और कुछ उत्तराखंड की लोककथाएं कशीदाकारी की तरह कहानी को सौंदर्य प्रदान करती है जैसे राजा सगर की कथा, गंगा के धरती पर अवतरण का प्रसंग या बुरास और काफल की लोककथाएं-पहाड़ी लोकगीत कहानी को ताल देते हैं और प्रकृति के गहने की तरह पक्षी, राजहंस, देवहंस, बुलबुल की जानकारी दी गयी है. यात्रा के छोटे-छोटे पड़ाव कहानी को आगे बढ़ाते हैं जैसे औली की यात्रा, अनुसुइया की यात्रा, सहस्त्रताल की कथा ये सब सुनी हुई सी कथाएं ऐसा लगता है ऊंचे पर्वत से कोई आवाज़ का परावर्तन हो रहा हो, विज्ञान इसे 'इको' कहता है पर उपन्यास में यह प्रेम की अनुगूंज की तरह लगती है.

स्वाति तिवारी जी के पास शब्दों की असीम ऊर्जा का एक प्रवाह है, एक ख़ास शैली भी है जो उनकी अपनी मौलिक है. ज्ञान और जानकारियों का समृद्ध संचय भी है. एक अच्छी फ़ोटोग्राफर भी हैं और शब्दों के रेखाचित्र बनाने की कला जानती हैं जिसका उन्होंने उपन्यास में भरपूर प्रयोग किया है. उपन्यास में नयापन और ताज़गी है, पत्रों के माध्यम को भी इस्तेमाल किया है. उपन्यास में अपर्णा की डायरी विधा भी शामिल की गयी है. तमाम रोचकता, प्रवाह के बावजूद जो कमी पाठक महसूस करता है वो यह है कि पति के रूप में राकेश के चरित्र को जो ऊंचाई देने की कोशिश की गयी है वैसा पति भारतीय समाज में असंभव ना भी हो तो दुर्लभ तो है ही. पति के चरित्र को थोड़ा दबा दिया गया है. यदि पति के अंदर की ईर्ष्या और द्वंद्व को भी खुल कर लिखा जाता है तो उपन्यास ज़्यादा प्रामाणिक होता. पवित्रता के बोध से उपन्यास में ब्रह्मकमल पूरा खिलते-खिलते कुछ रुक गया सा लगता है. उत्तराखंड त्रासदी को लेकर भी कई विमर्श किये जाने की संभावना उपन्यास में दिखाई देती है जिसे लेखिका ने बस हलके से छुआ और छोड़ दिया है, शायद कहानी को १२ वर्षों के वनवास के बाद आज की प्रासंगिता से जोड़ने भर के लिए त्रासदी का ज़िक्र किया गया है. मिथक की संरचना करते हुए महत्वपूर्ण प्रयोग किये गये हैं जैसे घुमक्कड़ साधु के मुख से धरती पर भागीरथी के अवतरण की कथा का प्रसंग, अनुसुइया की कथा. उपन्यास के सामाजिक वैषम्य की प्रतिक्रिया में व्यक्ति चेतना के अंतर्मुखी और आत्मकेंद्रित होकर खो जाने का चित्रण है.

प्रकृति से बढ़कर कोई विज्ञान नहीं है. प्रकृति के साथ जीने का दूसरा नाम ही विज्ञान है. विज्ञान की खोज का अर्थ है प्रकृति के काम करने के तरीक़े को जान लेना. ज़ाहिर है, जब हम प्रकृति के संपर्क में आते हैं, तो इसकी सरलता हमें बेहद आकर्षित करती है. हमारे मन में जो प्रकृति के बीच रहने की या पहाड़ों पर जाने की इच्छा होती है, वह कहीं न कहीं हमारी आदिम इच्छाओं का ही उभार है... धर्म ज्ञान यही कहता है. और तीर्थो की यात्रा भी यही एक जरिया रहा है. उपन्यास कहता है कि भौतिक स्रोत और मानवीय संस्कृति को एकाकार होकर किसी स्थान विशेष की पहचान बनने में हज़ारों साल लगते हैं और इस उपन्यास में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता. लेखिका की सृजन धर्मिता को नये आयाम देता यह उपन्यास पाठको को पसंद आयेगा.

२/९, रणथंबोर कॉम्प्लेक्स
जोन-२, एम. पी. नगर, भोपाल-४६२०११.
मो. : ९५२५६०६०३३

सिर्फ़ आधे घंटे के लिए !...

(पृष्ठ १४ से आगे)

''वैसे तो सब ठीक है लेकिन मुझे ख़ेद है कि तुम्हारा सी. ए १२५ कुछ ज़्यादा है. तुम्हारा पिछले साल का अल्ट्रासाउंड नॉर्मल था पर वो एक साल पहले की बात है. हमें बिना किसी देरी के अल्ट्रासाउंड करना होगा. मैं कुछ रैफ़ैरल भी दूंगा तो बाक़ी विशेषज्ञों को भी तुम बिना देर किये दिखा दो. कब आ सकती हो तुम अल्ट्रासाउंड के लिए?''

''कितना है मेरा सी. ए १२५ डॉक्टर?''

''१२००, इसे ३५ से कम होना चाहिए.''

इन दिनों कोई डॉक्टर से मिलने की प्रतीक्षा नहीं करता यह जानने के लिए कि शरीर की गुस्ताख़ हरकत का कारण यह है. धन्य हो इंटरनेट का, आप अपने तथाकथित रोग के लक्षणों से, उसके कारणों के बारे में ज़रूरत से ज़्यादा जानते हैं, सोचते हैं, परेशान होते हैं और डरते हैं. अंतरा ने भी इंटरनेट के चप्पे-चप्पे से सी. ए १२५ के ज़्यादा होने के सभी संभावित कारण जान लिये. उदर रोगों से लेकर ओवेरियन कैंसर तक, और इनके बीच न जाने कितने रोग थे जिनके उसे होने की संभावना थी, ख़ासकर ओवेरियन कैंसर जो उसके परिवार में कई लोगों को हो चुका था. जीवन की रोशन परिकल्पनाएं धुंधले सायों में परिवर्तित होने लगी थीं. अजीब था किस तरह रोज़ के 'आधे घंटे' ने उसकी मृत जिजीविषा को जीवित कर दिया था. और जब लंबी आयु की चाह उसकी सांसों में रफ़्तार घोलने लगी थी, तब यह जानना कि ऐसी सांसों की उम्र सीमित है, निराशाओं का प्रबल विस्तार भर गया उसमें. उसके बाद उसकी बच्चियों का क्या होगा? काश! उन्हें बड़ा करने की चाह को वह जैम, जैली या फ्रोजन सब्ज़ियों की तरह परिरक्षित कर पाती.

सबसे पहले उसे ही बताना होगा ...यह सबसे पहले जानने का अधिकार उसे इसलिए था कि उन्हें साथ-साथ रहते हुए सोलह वर्ष हो गये थे या इसलिए कि वो उसकी बच्चियों का पिता था. वह तय नहीं कर पा रही थी. वह समझ नहीं पा रही थी कि कैसे उसे सूचित करे. एक अरसा हो गया था उससे अपने बारे में बात करे हुए. अंततः उसने तय किया कि वो इसे भी गृहस्थी की एक कठिन समस्या की तरह उसके सामने रखेगी जिसे सुलझाने के लिए कुछ आश्वस्त करने की, कुछ अतिरिक्त टेलीफ़ोन की और कुछ जोड़तोड़ की ज़रूरत थी. भीतर कहीं एक सांत्वना की इच्छा थी, खोये हुए ढांढ़स को संबल चाहिए था और यदि संभव हो तो मुक्त रूप से रो लेने की स्वतंत्रता.

''तुमसे कुछ बात करनी थी.''

''कहो.'' उसने अपनी स्क्रीन के टैक्स्ट को नीचे स्क्रोल करते हुए कहा. फिर उसने एक लाइन माउस से हायलाइट की और उसे ग़ौर से देखने लगा. फिर वह अपने आपसे बुदबुदाया, ''तो यह है फ़साद की जड़.'' वह शायद भूल गया था कि वो वहां खड़ी थी कुछ कहने के लिए.

''क्या मुझे देख कर बात कर सकते हो?''

''मैं काम कर रहा हूं, पर सुन रहा हूं. बोलो क्या बात है?'' उसने स्क्रीन के टैक्स्ट को और नज़दीक से पढ़ते हुए कहा.

नहीं, यह गृहस्थी की समस्या नहीं थी, यह समस्या उसकी थी, सिर्फ़ उसकी. उस क्षण अंतरा ने उसे मन की खिड़की से बाहर फेंक दिया और बिना कुछ कहे कमरे से बाहर निकल गयी. जाते हुए उसने उसे चिड़चिड़ा कर कुछ बड़बड़ाते हुए सुना और अनसुना कर दिया.

दूसरे दिन वह एंड्रयू को एक निःशब्द दर्द से ताक रही थी जब उसने मुस्कराते हुए कॉफी का कप उसके सामने रखा.

''कभी सोचा है कि क्या होगा यदि तुम बुरी तरह से बीमार पड़ जाओ तो?''

''नहीं.''

''तुम्हें चिंता नहीं होती?''

''नहीं. मुझे पता है तुमसे तो मदद की कोई उम्मीद भी नहीं है क्योंकि तुम्हारा तो फ़ोन नंबर भी नहीं है मेरे पास.''

''फिर ...?''

''फिर क्या? जो होगा उससे निबटूंगा. जूझूंगा.''

''तुम्हारे परिवार में कोई नहीं है?''

''है ना. मेरा बेटा है पर वो मेरी शक्ल नहीं देखना चाहता. अपनी मां के साथ रहता है. उसकी दूसरी शादी हो चुकी है. एक बहन है, एक भाई है. सब अपने अपने दायरों में व्यस्त हैं. किसी को तंग नहीं करूंगा.''

''तुमने मुझे कभी बताया नहीं.''

''तुमने कभी पूछा ही नहीं.''

''अगर तुम कल मर जाओ तो तुम्हें किस बात का सबसे ज़्यादा अफ़सोस होगा?''

''तुम्हारे मुझे फ़ोन नंबर और पता न देने के निर्णय का.''

''उसके अलावा.'' वह हंस पड़ी.

''किसी भी बात का नहीं.''

''किसी भी बात का नहीं?''

''मैं चीज़ें कल पर नहीं छोड़ता. उन्हें आज के आज ख़त्म करने में विश्वास है मेरा.''

''पर वो आज ख़त्म न हो सके तो?''

''तो वह तुम्हारी कमज़ोर योजना क्षमता का प्रतीक है. या तो तुमने अपने ऊपर ज़रूरत से अधिक या कम विश्वास किया या अपने काम के महत्व को गंभीरता से नहीं लिया. तुमने अपना वैचारिक और भौतिक सर्वस्व न तो अपने आप को दिया, न ही अपने काम को.''

''तुम्हें नहीं लगता कि लोग अपनी इच्छाओं के साथ समझौता करते हैं, उसे कल पर टालते हैं क्योंकि उनके मन में यह एक निश्चिंत आस होती है कि वे लंबे समय तक जीने वाले हैं अगर उन्हें पता होता कि उन्हें कब मरना है तो वो अपनी ज़िंदगी दूसरे ढ़ंग से जीते.''

''हां ज़्यादातर लोग वैसा करते हैं. क्योंकि अपनी इच्छाओं के साथ समझौता किये बिना जीना कठिन होता है. आसान नहीं है वो करना. बहुत चुनौतियां हैं और सामाजिक तौर पर कायम की गयी सफलता की परिभाषा के परे देखने का और जीने का साहस होना चाहिए. आसान होता है एक वेरियेबल (परिवर्तनशील राशि) होना जो कुछ नियमों पर आधारित एक समीकरण में फिट हो जाये. आज तुम कुछ विचलित-सी लग रही हो? सब कुछ ठीक तो है?''

''तुम मुझे दिखाओगे, तुम जहां रहते हो?''

सुनकर उसके कॉफी का घूंट उसके मुंह में होने के कारण उसे ठसका लग गया.

''क्या कहा? फिर से दोहराओ तो.''

''क्या तुम मुझे अपना घर दिखाओगे? मेरे पास तीन बजे तक का समय है. उसके बाद मुझे बेटियों को स्कूल से पिकअप करना है.''

''मैं तुम्हें पहले ही चेता दूं. इसमें आधे घंटे से ज़्यादा लग सकता है. ...और कॉफी का कोई स्कोप नहीं है.''

''मुझे लगता है कि हमें अपने समीकरण से कॉफी के वेरियेबल को हटा देना चाहिए.''

''ठीक है. यदि तुम अपनी कार से जाना चाहो तो मैं अपना पता दे देता हूं और तुम पर है, यदि तुम चाहो तो मेरी ड्रायविंग को अपने भरोसे का नायाब तोहफ़ा भी दे सकती हो.''

''चलो एक बार तुम पर भरोसा करके भी देख लिया जाये. तुम्हें परेशानी तो नहीं होगी मुझे ले जाने में और फिर तीन बजे के पहले वापस यहां छोड़ने में?''

''तुम आज वो नहीं हो, जिसे मैं अब तक मिलता रहा हूं.''

''इसके विपरीत आज मैं पूरी तरह 'मैं' हूं.''

''मुझे डर है कहीं तुम अपने इस निर्णय पर बाद में पछताओ ना.''

''देखा जायेगा. अब चलें?''

''तुम्हारा यह रूप सचमुच नया है. तुम्हारे एक तरह के संकुचित, संकोची और सतर्क से भारतीय परिदृष्य के परिप्रेक्ष्य में यह अंधे दुःसाहस की ज़िद.''

''अब इसका क्या आशय निकालूं मैं.''

''क्या है वो जो तुम मुझसे छुपा रही हो?''

वह मुस्करा दी. उसका यह सह-अनुभूति का अव्यक्त भाव अंतरा के भीतर जमी बर्फ़ को पिघला गया. उसके हृदय पर तने बोझ को भांप लेने की उसकी क्षमता ने उसे अचीन्हा सा ढांढस बंधाया. उसके कहे अनुसार अंतरा का 'संकुचित, संकोची और सतर्क-सा भारतीय परिदृष्य' अब भी इस नगण्य से सच को साफ़-साफ़ स्वीकारने से कतरा रहा था कि उन दोनों के मध्य एक स्वःसंतुलित और सांस लेती 'कैमिस्ट्री' थी. ईमानदार, आडंबरहीन और निर्भीक.

उसका घर अंतरा के घर की तरह साफ़-सुथरा और व्यवस्थित नहीं था, पर एक ऊष्णता से भरपूर था. उसके पास दो माले पर बिखरे छः सुसज्जित बैडरूम की जगह, मात्र दो बैडरूम थे जिनमें से एक उसका ऑफ़िस था. उसके ऑफ़िस की मेज़ पर कुछ कंप्यूटर थे, एक मुस्कुराते हुए बच्चे की तस्वीर थी जो शायद उसका बेटा था और एक हैडसेट औंधा सा पड़ा था. एक बुक-केस में क़िताबें थीं, एक बढ़ता हुआ 'मनी प्लांट', बची-खुची कॉफी को समेटे कॉफी के मग. पैटियो (घर के पीछे छोटा सा आंगन) में एक सफ़ेद पिंजरे में तीन कैनेरी चहक रही थीं, एक 'हमिंग बर्ड' का लाल फीडर टंगा हुआ था और गमलों में 'डेज़ी' और

'लिली' के फूल एक अक्षुण्य ख़ुशी को बटोरे मुस्करा रहे थे.

''तुम्हे गार्डिनिंग पसंद है?''

''थोड़ी बहुत.'' फिर कुछ रुककर उसने कहा, ''चलो अब मुझे बताओ.''

''क्या बताऊं?''

''ये सब क्या है? क्या है जो तुम्हारे दिल पर हज़ार मन के भार-सा पड़ा हुआ है?'',

''तुम ...'' कहकर उसने अपनी आंखें बंद कर ली थीं. उसे डर था उनमें उभरती नमकीन झीलों के पानी की पीड़ाएं गहन गहराई से छूटकर उथले और सतही समतल पर भाप न बन जायें.

''तो तुम मुझे नहीं बताओगी?''

''अगर बताने को हुआ तो ज़रूर बताऊंगी.'' उसने अपनी बंद आंखों के मध्य एक सुरक्षित बाढ़ को सहेजे हुए, लेकिन एक टूटते से, आर्द्र स्वर में कहा.

''झूठ!'' एंड्रयू के फुसफुसाते आक्षेप में अंतरा को उसकी गहरी सांस अपने चेहरे के बहुत समीप महसूस हुई. फिर उसने अंतरा को गोद में उठा लिया.

''मैंने जितना सोचा था तुम उससे कहीं ज़्यादा हल्की निकली.''

''तो तुम मुझे गोद में उठाने की कल्पना करते थे? छि:!''

''बिलकुल निर्दोष और हानि रहित कामना थी. ऐसी, जो मेरी रात में सुबह की प्रतीक्षा भरती थी और हर सुबह में स्फूर्ति.''

''क्या इस प्रकार की और भी निर्दोष और हानि रहित कामनाएं हैं जिनसे मैं अवगत नहीं हूं?''

''बेशक. असंख्य...''

न एंड्रयू को कहीं पहुंचने की जल्दी थी, न अंतरा को कहीं पहुंचना था. उसने उसे लिखे हुए एक चुनौतीपूर्ण संगीत के टुकड़े-सा पढ़ा. जैसे कोई हर लय, हर ताल, हर झंकार को बड़े मनोयोग से आत्मसात करे, फिर उसे हृदय के सुरों से बांध कर ऐसे मंत्रमुग्ध संगीत की रचना करे कि उसमें हर जमा हुआ भाव पिघल कर बहने को आतुर हो जाये. हर बंधन, झिझक मुक्त होकर ऐसे भावनात्मक, शीर्ष समन्वय को स्थापित करे कि देह, आत्मा, और गुनगुनाता अंतरिक्ष सब एकरूप हो जाये. उसने अंतरा को कुछ इस तरह से प्यार किया.

''शुक्रिया ...'' अंतरा ने फुसफुसा कर कहा.

''किस चीज़ का? ''

उत्तर में उसने अपने होठों के तीव्र, जीवंत हस्ताक्षर उसके होठों के काग़ज़ों पर कर दिये.

''अभी तक तुमने मुझे अपना फ़ोन नंबर नहीं दिया है.'' एंड्रयू की आवाज़ नम और रुंधी हुई सी थी.

''हमें, हमारे बीच किसी फ़ोन नंबर की ज़रूरत नहीं है.''

उसकी बांहों के संरक्षण में अंतरा की सोच विगत के वनों में भटकने लगी. उसकी दोनों बेटियां जो प्रतिदिन की नीरस दिनचर्या सी एक प्रेमविहीन, यांत्रिक और जैविक प्रक्रिया का परिणाम थीं... जीवन के अन्य ज़रूरी दस्तावेज़ों से गुज़रते हुए जल्दबाजी में निगले जाने वाले भोजन के समान. वह बड़े मनोयोग से ढूंढ़ने लगी वो पल जब अपने सोलह साल के वैवाहिक जीवन में एक बार भी कभी वो उसका केंद्र बिंदु बनी हो. भावोन्माद से विहीन संबधों को जीते हुए, वह मानने लगी थी कि उसमें स्वयं के प्रति उस बुझी हुई लौ को जाग्रत करने की क्षमता नहीं है. एंड्रयू एक मूर्तिभंजक की तरह उसके जीवन में आया था जिसने उसके सहस्त्र टुकड़े कर दिये थे. हर टुकड़ा एक ढले हुए आकार की गिरफ़्त से मुक्त होकर, नयी कांति से दमकता हुआ, उसका स्वयं से परिचय करा रहा था. अंतरा की पकड़ उसके इर्द–गिर्द कुछ सख़्त हो गयी जैसे वह छूटा जा रहा हो.

शांत झील की सतह पर बीते हुए जीवन के कुछ और प्रतिबिंब उभरे ...अतीत की घुटन से मुक्त एक तेज़, चमकती दामिनी की तरह. ...गलियों के हर तिराहे, चौराहे पर उसको भेदती हुई अश्लील दृष्टियां, मुस्कराहटें और मज़ाक ...कभी उसका दुपट्टा खींचते, कभी उसकी देह को नोचते, मरोड़ते, अदृष्य हाथ, चिपकते शरीर ...सर्दी की सुनसान सड़क पर सायकल से स्कूल जाते वक़्त या भीड़ में, चाहे वह मंदिर का अहाता हो, दशहरे पर जलते हुए रावण को देखनेवालों का हुजूम या लोगों से भरी ट्रेन का डिब्बा. आदमियों की भीड़, पुरुषों की भीड़ जो कामुक उत्पीड़न, 'मोलैस्टेशन' में दक्ष थी, जिसे बलात्कार करना आता था, जिसके लिए अपनी दैहिक प्यास को किसी भी तरह से बुझाने के कुछ क्षण ही पर्याप्त थे पर कितने कम होते हैं वो पुरुष जिन्हें स्त्री को प्यार करना आता है, उसकी प्यास को समझना और बुझाना आता है.

लघुकथा

'तू किस मिट्टी की बनी है मां !'

डॉ. कुंवर प्रेमिल

'मेरी जुराबें कहां हैं मां?'

'मेरी गणित की क़िताब नहीं मिल रही हैं मां.'

'मेरा टिफिन लगा दिया न मां!'

'दूध वाला गेट पर खड़ा है मां?'

'पापा, कच्छा-बनियान ढूंढ़ रहे हैं मां.'

'चाय-बिस्कुट कब दोगी मां?'

'आटो आ गया है. हम स्कूल जा रहे हैं. गेट बंद कर देना मां.'

'आज महरी नहीं आयेगी. इतने सारे बर्तन कैसे मांजोगी मां?'

'गैस आयी, दरवाज़ा खोलिए न मां.'

'शाम को मेरे दोस्त आयेंगे, कुछ अच्छा-सा बना दोगी न मां.'

'दादा-दादी के लिए गरम-गरम चपातियां बना दो न मां.'

'मां आज स्कूल की फ़ीस चाहिए, फ़ीस के अलावा कुछ अतिरिक्त पैसे भी दे दिया करो न मां.'

'मां बनिया सामान नहीं देता, पिछली उधारी मांगता है मां.'

'मां सबकी तीमारदारी करती हो, तुम कभी बीमार नहीं पड़ती क्या मां?'

'पापा भी तुम्हें कभी-कभी डांटते हैं. फिर मुस्कुरा कैसे लेती हो मां?'

'मां, तू सोती कब है, उठती कब है, तू किस मिट्टी की बनी है मां?'

'सारी विपत्तियां झेलने के लिए एक अकेली ही क्यों ज़िम्मेवारी निभाती हो मां... सिर्फ़ मेरी ही नहीं, कभी-कभी तो तुम पूरे परिवार की ही बन जाती हो मां.'

एम. आई. जी-८, विजयनगर,
जबलपुर-४८२००२ (म.प्र.) .
मो. : ९३०१८२२७८२

''तुम्हारी सुरक्षा तुम्हारी ज़िम्मेदारी है. आदमियों की इच्छाएं अंधी होती हैं.'' मां ने एक बार समझाया था पर औरतों की इच्छाओं के बारे में वह चुप्पी साधे रही थीं, उसका उन्होंने ज़िक्र नहीं किया था. वह मां से इस बात पर तब सहमत थी कि ग़ैर ज़िम्मेदार और उच्छृंखल औरतों के पास कष्ट और उसका दंड भोगने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता ... और 'ज़िम्मेदार औरतें' ज़िम्मेदार होने की लाख कोशिशें कर लें, कुछ थोड़ी सी ग़ैर-ज़िम्मेदारी चिपकी रह जाती थी एक पके हुए, सड़ते हुए, अपराध भावना से ग्रसित आत्मबोध की तरह जो उन्हें आदमियों की अंधी इच्छाओं के आघात के योग्य बना देती थी.

ये खोज उसकी यात्रा का भाग थी कि औरतों की भी इच्छाएं होती हैं और दिखावटी सामाजिक संतुलन और नैतिक विवक्षाओं के लिए इन इच्छाओं का न केवल अंधा होना वर्जित था, बल्कि सामाजिक दायित्वों की भीड़ में इनके होने का उल्लेख भी वर्जित था, पतित था. पर वो तब जब कोई सामाजिक बंधनों में बंध कर जीना चाहता हो ...जब कोई अनिश्चित जीवन की लंबी उम्र भोगना चाहता हो. मृत्यु की आगाह ने उसकी उहापोह को ख़त्म कर दिया था ...एक दिन खुलकर जी लेने का निमंत्रण दिया था.

''...भाड़ में गया संसार.'' उसने मुक्त होकर स्वयं से कहा.

एंड्रयू ने उसे तीन बजे के पहले वापस कॉफी शॉप पर छोड़ दिया. जाने से पहले उसने अंतरा के कपोलों पर गुस्ताख़, दृढ़ और निरंकुश बोसा जड़ दिया. अंतरा ने उसके अनुग्रह को उसी तीव्रता के साथ लौटाया, बिना आजीवन वियोग के भय के, बिना कल मिलने की उम्मीद के.

''मैं अगले दस दिन तक तुमसे मिल नहीं पाऊंगी. कुछ बहुत ज़रूरी काम निबटाने हैं.''

''मुझे तुम्हारी कहानी का यह भाग बिलकुल पसंद नहीं आता. तुम्हारा रहस्यमयी प्रतिरूप मेरी सांसें निचोड़ लेता है.''

''हमारा आज बहुत ख़ूबसूरत था. अब तुम जाओ.''

''जाने क्यूं विक्षिप्त, उद्विग्न सा महसूस कर रहा हूं.''

''मैं भी.''

उसने अपनी बच्चियों को स्कूल से पिकअप किया.

उसके अस्तित्व की एक अनवरत रेखा ...उनमें ... उनके जीवन में ...उन जीवनों में, जो उनसे प्रस्फुटित होंगे. उसे स्वयं पर गर्व हुआ ...वह मानवीय सृष्टि की अद्भुत संरचना का एक छोटा–सा प्रयास थी.

अंतरा के लिए आसान नहीं था अपने पति को अपनी जीवन रेखा से अलग रखते हुए विभिन्न तरह के डॉक्टरों से मिलना और गृहस्थी भी चलाना जैसे कहीं कुछ नहीं बदला था. उसकी सदैव की व्यस्तता में उसे समय भी नहीं मिल पाता था कि वह यह भांप ले कि अंतरा के भीतर कहीं कुछ टूट गया था. अंतरा के कई तरह के अल्ट्रासाउंड हुए, सी टी स्कैन, कई तरह की रक्त जांच, दो आउट डोर सर्ज़री, औंकोलॉज़िस्ट, एंडोक्रिनोलॉज़िस्ट, गैस्ट्रोएंट्रोलॉज़िस्ट, रेडियोलॉज़िस्ट से एक के बाद एक अपाइंटमैंट. पूरी प्रक्रिया उसे निचोड़ती चली गयी, अंदर से और बाहर से भी, ख़ासकर तब, जब उसे किसी के साथ बांटा न जा सके. कुछ मित्रों की उसे आवश्यकता पड़ी, समय-समय पर बच्चियों की देखरेख और उन्हें स्कूल से पिकअप करने के लिए, पर कोई यह न जान सका कि क्यों. फिर परिणाम की घोषणा हुई.

''मैं डॉक्टर कैंट एंट्रा. एक अच्छी ख़बर सुनानी थी. मैलिगनैंसी (कैंसर) नहीं है तुम्हें. कुछ बिनाईन ओवेरियन सिस्ट है. एबडॉमिनल एबनॉरमैलिटी भी नहीं है. कुछ मात्रा में एंडोमीट्रियौसिस है. एक सर्ज़री करनी पड़ेगी. पर इसके अलावा ऐसा कुछ भी नहीं है कि जान को ख़तरा हो. तुम्हें नर्स फ़ोन करेगी जिसके साथ तुम सर्ज़री का अपाइंटमैंट तय कर लेना. मुझे इस तरह के फ़ोन करना बहुत अच्छा लगता है.''

वह विस्मित थी. जीवन ने मृत्यु की ओर जा रही सड़क पर एक्ज़िट ले ली थी. यह सुनकर न माप सकनेवाला एक सुकून उसके जेहन में उतरता चला गया. उन गहन शांत सांसों में उसे यह बात एंड्रयू के साथ बांटने की इच्छा हुई और यह बताने की, कि प्रतिदिन के आधे घंटे के लिए, एक कॉफी के कप के सहारे वो पूरा जीवन काटने को तैयार है. किंतु अगले ही पल वह भ्रमित थी ...वो एक ऐसा वेरियेबल थी, एक ऐसी परिवर्तनशील राशि जो कुछ नियमों पर आधारित एक समीकरण में फ़िट थी. अगर वह वो परिवर्तनशील राशि नहीं थी तो वो एक असीम अंतरिक्ष की एनट्रॉपी में परिवर्तित हो जायेगी ...एक निरंतर गति से बढ़ता हुआ 'कैओस', एक अव्यस्था, ऊष्मागतिकी के दूसरे सिद्धांत (सैकंड लॉ ऑफ थर्मोडायनैमिक्स) का जीता जागता रूप.

उस शाम ज्यूकिनी छीलते हुई उसने विरक्त भाव से अपने पति को देखा. वो जो अजनबी से भी अधिक पराया था पर जो उस समय बड़े बचकाने अंदाज़ में उन दो प्राणियों के साथ हंसी ठिठोली कर रहा था जो उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय थीं ...उसकी बच्चियां. वो इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं कर पा रही थी कि वो दोनों अपने डैडी पर जान छिड़कती थीं. उनके मम्मा और डैडी, दोनों के बीच जो भी था और जो नहीं था, उससे पूरी तरह अनभिज्ञ. उसका 'कैओस' उन्हें तहस-नहस कर देगा.

दूसरे दिन उसने पार्किंग लॉट में अपनी कार 'स्टारबक्स' से कुछ दूर खड़ी की जहां से वह छिप कर एंड्रयू को देख सके. उसने अपनी कार में बैठे हुए उसे उसकी काली 'मस्टांग' में आते हुए देखा. 'स्टारबक्स' के नज़दीक एक खाली जगह पर कार पार्क करके, वह कार के बाहर निकला. उसका कंधा लैपटॉप के भार से झुका हुआ था और उसकी चाल में एक भारीपन था जैसे कोई भारी बोझ ढो रहा हो. रिमोट से कार लॉक करके, 'स्टारबक्स' जाते हुए वह अपने आसपास टकराते अनजान लोगों में कुछ ढूंढ़ता सा दिख रहा था. उसकी आंखें चौकस थीं और उसके चेहरे से अवसाद टपक रहा था. 'स्टारबक्स' के भीतर वह गुम हो गया.

अंततः यह उसके लिए जीने से भी कठिन हो गया. दो हफ़्तों से वह यह कर रही थी. उसे दूर से देखती ... एक आशा की चिंगारी के साथ आते हुए और एक ज्वलंत नैराश्य के साथ जाते हुए. अंतरा ने अपने अशांत मन की नींवों को टटोलकर देखा कि क्या वो तैयार थी जीवन भर यह करने के लिए या उस समय तक, जब तक वह आ रहा है उसे ढूंढ़ते हुए. यदि उसने आना बंद कर दिया तो? या वो कहीं खो गया बिना किसी नामोनिशान को पीछे छोड़े. ...लोगों की उसी भीड़ में आज जहां वो उसे रोज़ ढूंढ़ता है ...तो क्या वो उसे जीवन भर एक पीड़ित एकांत के पश्चाताप की तरह भोगने को तैयार थी? एक सिहरन उसे भीतर तक कचोट गयी.

यह सच था कि 'कैओस' वह हो नहीं सकती थी, लेकिन चंद नियमों से बने समीकरण में फंसा एक बिंदु, समानांतर अंतरिक्ष में भटकते हुए दूसरे बिंदु की व्यथा तो बांट ही सकता था, एक कप कॉफी के साथ... सिर्फ़ आधे घंटे के लिए.

2839, Norcrest Drive,
San Jose, CA, USA.
E-mail : anshu@udgam.com

कमला गोइन्का फाउंडेशन

गोइन्का हिंदी साहित्य पुरस्कार २०१६ के लिए प्रविष्टियां आमंत्रित

कमला गोइन्का फाउंडेशन के प्रबंध न्यासी श्री श्यामसुंदर गोइन्का ने इस वर्ष के गोइन्का हिंदी पुरस्कारों की घोषणा की. हिंदी की वरिष्ठत्तम साहित्यकार महादेवी वर्मा को समर्पित **'महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य पुरस्कार'** के अंतर्गत हिंदी की किसी भी विधा के साहित्यकारों को रु. १०००००/- (एक लाख रुपये) से पुरस्कृत किया जायेगा. पिछली बार यह पुरस्कार प्रख्यात साहित्यकार आलोचक डॉ. नामवर सिंह को मिल चुका है. साथ ही, प्रन्यास वर्ष २००४ से महिला साहित्यकारों को **'रत्नीदेवी गोइन्का वाग्देवी पुरस्कार'** के अंतर्गत रु. ५१०००/- (इक्कावन हजार रुपये) से पुरस्कृत कर रहा है. यह पुरस्कार श्रीमती मृदुला गर्ग, श्रीमती चित्रा मुदगल, डॉ. श्रीमती सूर्यबाला, श्रीमती चंद्रकांता, श्रीमती ममता कालिया व डॉ. नताशा अरोड़ा को प्रदान किया गया है.

श्री श्यामसुंदर गोइन्का ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी कर उपरोक्त दोनों पुरस्कारों के लिए साहित्यकारों को प्रविष्टि हेतु वर्ष २००६ से २०१५ के बीच की अवधि में प्रकाशित अपनी कृति की चार-चार प्रतियां एवं पासपोर्ट आकार की दो फ़ोटो प्रस्ताव-पत्र के साथ न्यास कार्यालय में भेजने का आग्रह किया. नियमावली एवं अधिक जानकारी के लिए कैलाश जाटवाला को 'कमला गोइन्का फाउंडेशन', ३५०, ए-१ बिल्डिंग, शाह एंड नाहर इंडस्ट्रीयल इस्टेट, धनराज मिल्स कंपाऊंड, सीताराम जाधव मार्ग, लोअर परेल, मुंबई-४०००१३ स्थित कार्यालय में अथवा मो. ०९३३२४७९१७९ पर संपर्क करें. **ई-मेल :** mumbai@gogoindia.com पर संपर्क किया जा सकता है. **वेबसाइट :** www.kgfmumbai.com का अवलोकन करें. प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि ३० अप्रैल २०१६ है.

निवेदन

रचनाकारों से

''**कथाबिंब**'' एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी कहानियां भेज सकते हैं. कृपया लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि ई-मेल से न भेजें. ई-मेल का पता है : kathabimb@gmail.com रचना की ''डॉक'' फ़ाइल के साथ ''पीडीएफ'' फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.